विक्रमार्क
THE VIKRAMĀRKA

अर्धवार्षिक शोध –पत्रिका

Half Yearly Research Journal

ISSN 2348-7720

Vol - 5, ग्रंथ - 5, वर्ष - 2, अंक - 1 उज्जैन, माह- मार्च 2015 से मार्च 2016, वार्षिक 80/-रु, प्रति अंक 40/- रु.

भोजदेव का धार ताम्र पत्र प्रथम

भोजदेव का धार ताम्र पत्र द्वितीय

विक्रमार्क

THE VIKRAMĀRKA

ग्रंथ - 5
Vol - 5
वर्ष - 2
अंक - 1

अर्धवार्षिक शोध–पत्रिका
Half Yearly Research Journal
मार्च 2015 से सितम्बर 2015
अक्टूबर 2015 से मार्च 2016

विक्रमाब्द 2073

प्रधान सम्पादक
मनोज श्रीवास्तव

सम्पादक
डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

सह सम्पादक
रमेश कुमार शुक्ल

समन्वयक
संजय यादव
प्रदीप अग्रवाल
डॉ. प्रकाशेन्द्र माथुर

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, मध्यप्रदेश
1, उदयन मार्ग, उज्जैन -456010

Maharaja Vikramaditya Shodhpith
Swaraj Sansthan Sanchalanalay, Madhay Pradesh
1, Udayan Marg, Ujjain - 456010 (M.P.)
Telefax : 0734-2521499
Email : vikramadityashodhpeeth@gmail.com
Web. : www.mvspujjain.org

विक्रमार्क

THE VIKRAMĀRKA

ISSN 2348-7720

अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

Half Yearly Research Journal

संवत् : **2073**

सन् : मार्च 2015 से सितम्बर 2015

: अक्टूबर 2015 से मार्च 2016

मूल्य : एक अंक 40/- रू.

वार्षिक 80/- रू.

आवरण : **राजा विक्रमादित्य स्वर्ण मुद्रा**

संपादक : **डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित**

संपादन सहयोग : **डॉ. जगन्नाथ दुबे**

आकल्पन : **रुद्राक्ष ग्राफिक्स, उज्जैन**
9165512233

प्रकाशक : **महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ**
स्वराज संस्थान संचालनालय
1, उदयन मार्ग, उज्जैन - 456010

दूरभाष : (0734) 2521499

Fax : 0734-2521499

Email : vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.org

मुद्रण : **पंचायतीराज मुद्रणालय**
1, औद्योगिक क्षेत्र, नागझिरी, देवास रोड, उज्जैन

कार्यालय सहयोग : **रितेश वर्मा, संजय मालवीय**

प्रकाशित सामग्री के विचारों से शोधपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अनुक्रम

			पृष्ट क्र.
01.	गति : काल के चक्र की	डॉ. गोविन्द गन्धे	01-05
02.	कालगणना में 'अवन्तिका' का महत्त्व	डॉ. रमण सोलंकी	06-09
03.	भारतीय कालगणना पद्धतियों में अद्वितीय विक्रम संवत्	डॉ. शुभम शर्मा	10-12
04.	कालगणना की आवश्यकता	कंचन तिलवानी	13-15
05.	खगोलीय गतियाँ और कालगणना	डॉ. राजेन्द्र प्रकाश गुप्त	16-20
06.	महाकाल कालीन विक्रमादित्य कालगणना	डॉ. प्रदीप पण्ड्या	21-23
07.	सोढंग के हस्तिलेख	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित डॉ. जे.एन. दुबे	24-25
08.	भारतीय इतिहास के आलोक का आदित्य : विक्रमादित्य	डॉ. अरुण वर्मा	26-28
09.	अवन्ती गौरव संवत् प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य	डॉ. शुभम शर्मा	29-31
10.	विक्रमादित्य के कालिदास एवं उनका उज्जयिनी प्रेम	डॉ. सीमा शर्मा	32-34
11.	भर्तृहरिः अवदान एवं सांस्कृतिक परिवेश	डॉ. तुलसीदास परौहा	35-38
12.	व्याकरण दर्शने भर्तृहरेर्योगदानम्	डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी	39-41
13.	संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य का साहित्यप्रेम	डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी	42-43
14.	भर्तृहरि नाथ और उनकी परम्परा की वेशभूषा	डॉ. किरण रमण	44-45
15.	पुरुषार्थ काम और श्रृंगार शतक	डॉ. श्रीमती माला प्यासी	46-51
16.	ब्राह्मणपुरी का परमार भोजकालीन शिवमंदिर	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित	52-53
17.	चिराखान वन में विशाल गजप्रतिमा	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित	54
18.	कथा सरित्सागर के आलोक में विक्रमादित्य	आचार्य डॉ. सदानन्द त्रिपाठी	55-58
19.	कथासरित्सागर एवं बृहत्कथा में विक्रमादित्य	डॉ. इला घोष	59-66
20.	सम्राट् विक्रमादित्य नवीन पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक संदर्भो में	डॉ. जे.एन. दुबे	67-70
21.	राजा भोज का धार ताम्रपत्र लेख	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित	71-75

गति : काल के चक्र की

इस ब्रहमाण्ड की रचना के साथ ही काल का चक्र प्रारम्भ हो गया जितना यह ब्रह्माण्ड रहस्यमय है उतना ही काल का चक्र भी काल के स्वरूप के बारे में कहा गया है।

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम्
रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते।
भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम्।।

।। 3/29/45,/37 श्री.

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान्।।

।।3/11/4 श्री.भा

यह काल दो परार्ध में बटा हुआ है। दो परार्ध की इसकी सीमा अवश्य कही गयी है। किन्तु वह अनार्दा और अनन्त है। इस देश में काल गणना के 09 मान प्रचलित हैं वे इस प्रकार है।

ब्राह्ममान, दिव्य, पैत्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य (परिवत्सर), सौर (संवत्सर), सावन (इडावत्सर), चान्द्र (अनुवत्सर), आर्क्ष (वत्सर)

किन्तु व्यवहार में चार मान ही प्रचलित हैं। उन मानो का वर्णन इस प्रकार है।

सौर - वर्ष, ऋतु, अयन, युग, की गणना सौर मान से की जाती है।

चांद्र - चैत्रादिमास तिथि आदि की गणना चांद्र मान से की जाती है।

नाक्षत्र - घटिकादि की गणना नाक्षत्रमान से की जाती है।

सावन - सूतक, वैद्य, चिकित्सादिवस आदि के लिये

सौर वर्ष - अश्विनी नक्षत्र से प्रारंभ तथा पुनः वहां तक आने में समय लगता है। वह सौर वर्ष कहलाता है। एक सौरवर्ष में देव असुर अहोरात्र (उत्तरायण में देवों का दिन असरों की रात, दक्षिणायन देवो की रात, तथा असुरों का दिन होता है।

चांद्र मास - अमावस्या से लेकर अमावस्या तक (पितरों का एक अहोरात्र कृष्णपक्ष की 7½ तिथि पूर्ण होने पर पितरों का दिवस प्रारम्भ अमावस्या को मध्याह्न शुक्लपक्ष की 7½ तिथि पूर्ण होने पर सायंकाल पूर्णिमा को मध्यरात्र होती है।

इन मानों की गणना तिथियों के आधार पर होती है। और वे तिथियाँ तथा उनका प्रारंभ और समाप्त के सम्बन्ध में कहा गया है।

अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः।।
शुक्लापञ्चदशीपूर्णा पौर्णमासी च पूर्णिमा।
कृष्णा साऽमात्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः।।

तिथियों के साथ ही नक्षत्र, वार आदि का भी महत्व है। हमारें यहाँ 27 नक्षत्र और 09 ग्रह माने गये है। तिथियों के आधार पर मास गणना होती है। और मास गणना के द्वारा ऋतुओं की गणना होती है।

चैत्र	-	वैशाख	वसंत ऋतु
ज्येष्ठ	-	आषाढ़	ग्रीष्म ऋतु
श्रावण	-	भाद्रपद	वर्षा ऋतु
अश्विन	-	कार्तिक	शरद ऋतु
मार्गशीर्ष	-	पौष	हेमंत ऋतु
माघ	-	फाल्गुन	शिशिर ऋतु

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।

कर्कोदेस्तु तथैव स्यात् षण्मासादक्षिणायनम्

ऋतु तथा वर्ष की गणना के पूर्व दिवस की गणना होती है और दिवस की गणना काल की लघुत्तम इकाई से प्रारंभ होकर 30 मुहुर्त तक पहुचता है।

2 परमाणु	-	1 अणु
3 अणु	-	1 त्रसरेणु
3 त्रसरेणु	-	1 त्रुटि
100 त्रुटि	-	1 वेध
3 वेध	-	1 लव
3 लव	-	1 निमेष
3 निमेष	-	1 क्षण
5 क्षण	-	1 काष्ठा
15 काष्ठा	-	1 लघु
15 लघु	-	1 नाड़िका
2 नाड़िका	-	1 मुहुर्त
30 मुहुर्त	-	1 दिनरात

इन दिन तथा वर्ष के आधार पर युग की गणना होती है। और वह इस प्रकार है।

कलियुग	04,32,000 वर्ष
द्वापर युग	08,64,000 वर्ष
त्रेतायुग	12,96,000 वर्ष
सतयुग	17,28,000 वर्ष
चारों युगों का योग =	43,20,000 (चतुर्युगी)

चौदह मन्वंतरो में से छः मन्वंतर पूर्ण हो चुके हैं। सातवें मन्वंतर का यह 28 वॉ कलियुग है।

वर्तमान 28 वें कलियुग के पॉच हजार एक सौ अठारह वर्ष (5117 पूर्ण हो चुके है। 04 लाख 26 हजार 882 वर्ष शेष बचे है।

सृष्टि के प्रारंभ से अब तक भारतीय काल गणना इस प्रकार है।

1 मन्वन्तर = 43,20,000 X 71 वर्ष

= 30,67,20,000 वर्ष

बीत चुके 6 मन्वन्तर = 1,84,03,20,000

बीत चुके 27 चतुर्युग = 43,20,000X27

= 11,66,40,000

वर्तमान कलियुग के व्यतीत वर्ष 5118

कालगणना का वर्तमान लेखा-जोखा

1,84,03,20,000+11,66,40,000+5,118 = 1,95,69,65,118

(एक अरब पिचानवे करोड़ उनहत्तर लाख पैसठ हजार एक सौ अठाहरा)

भारतीय व विदेशी काल गणना कर अंतर इस प्रकार है।

डोंगला	ग्रीनवीच
1. कर्क रेखा शीर्ष से होकर गुजरती है।	1. 55° उत्तरी अक्षांश पर स्थित होने से सूर्य कभी शीर्ष पर नही चमकता है।
2. प्राचीनकाल से ज्योतिर्विज्ञान केन्द्र रहा है।	2. कोई प्रचीन इतिहास नहीं है और न ही ज्योतिर्विज्ञान का केन्द्र रहा है।
3. उष्ण कटिबन्धीय तट का डोंगला में होना।	3. कोई उष्ण कटिबन्धीय तट न होने से यहाँ की जलवायु केवल शीत प्रधान होकर प्राणी के आवास अनुकूल नही है।
4. सूर्य उत्तरायाण होता हुआ डोंगला के शीर्ष पर भी आ जाता है।	4. सूर्य कभी शीर्ष पर न आया है और न कभी जाएगा।
5. उत्तरायण का अन्तिम बिन्दु होकर यहीं से सूर्य दक्षिणायन की ओर लौटता है।	5. 55° उत्तरी अक्षांश पर होने से उत्तरायण के अन्तिम बिन्दु से बहुत दूर होने के कारण सूर्य केवल क्षितिज के इर्द-गिर्द घूमता दिखाई देता है।
6. दिनमान एवं रात्रिमान मानवीय दिनचर्या के अनुकूल है।	6. दिनमान बहुत अधिक अथवा रात्रिमान अधिक होकर मानवीय दिनचर्या के अनुकूल स्थिति नहीं है

विदेशी काल गणना की विसंगतियां इस प्रकार हैं।

* चिन्ड्रन्स ब्रिटानिका Vo1.3-1964 में केलेण्डर का इतिहास बताया है।
* अंग्रेजी केलेण्डरों में अनेक बार गड़बडियाँ हुई हैं व इनमें कई संशोधन करना पड़े हैं।
* इनमें माह की गणना चन्द्र की गति से और वर्ष की गणना सूर्य की गति पर आधारित है। आज इसमें आपसी तालमेल नही है।

* ईसाईमत में ईसामसीह का जन्म इतिहास की निर्णायक घटना है। अतः कालक्रम को B.C.(Bofore Christ) और A.D. (Anno Domini) अर्थात् In the year of our Lord. में बांटा गया। किन्तु यह पद्धति ईसा के जन्म के कुछ सदियों तक प्रचलन में नहीं आई।
* रोमन केलेण्डर - आज के ईसवी सन् का मूल रोमन संवत् है। यह ईसा के जन्म के 753 वर्ष पूर्व रोम नगर की स्थापना से प्रारम्भ हुआ। तब इसमें 10 माह थे (प्रथम माह मार्च से अंतिम दिसम्बर तक) 1 वर्ष होता था 304 दिन का।
* बाद में राजा नूमा पिम्पोलियस ने दो माह (जनवरी, फरवरी) जोड़ दिये। तब से वर्ष 12 माह अर्थात 355 दिन का हो गया।
* यह ग्रहों की गति से मेल नहीं खाता था। तो जूलियट सीजर ने इसे $365^{1/4}$ दिन का करने का आदेश दिया। जिसमें कुछ माह 30 व कुछ 31 के बनाए फरवरी 28 का रहा जो चार वर्षो में 29 का होता है।

इस प्रकार यह गणनाएँ प्रारंभ से ही अवैज्ञानिक, असंगत, असंतुलित विवादित एवं काल्पनिक रही हैं।

विदेशी काल गणना आधार हीन है क्योंकि

* रोमन लिपि के अंकों में बड़ी संख्या व्यक्त करने की कोई व्यवस्था ही नही है। बड़ी संख्या को न तो वे गिन सकते थे, न ही उसे लिख सकते थे। शुक्र है घड़ी में बारह ही बजते हैं 48 तक बजते तो रोमन लिपि में घड़ी तो घड़ियाल बन जाती।
* प्रत्येक भारतीय त्यौहार चन्द्र या सूर्य की गति का अवलोकन व गणना करके निर्धारित होता है। जैसे राखी और होली पूर्णिमा को ही आएगी। और पूरा चन्द्रमा दिखेगा सबको मालूम है। कृष्ण जन्म अष्टमी को तो राम जन्म नवमी को मनेगा और दीपावली अमावस्या को ही होगी। मकर संक्रान्ति पर अयन परिवर्तन स्पष्ट अनुभव होगा हमारी छाया से। है न! वैज्ञानिक पद्धति।
* अब अमेरिका और यूरोप वासियों से पूछिये कि 25 दिसम्बर को नक्षत्रों की कोई निश्चित अवस्था रहती है क्या? अच्छा! सबकी नही तो सिर्फ सूर्य और चंद्रमा की स्थिति ही बता दीजिये।
  उत्तर उनके पास है ही नही तो देंगे कहाँ से?
  यही नही 1 जनवरी या 31 दिसम्बर को भी नया वर्ष मानने का कोई खगोलीय प्रमाण नहीं केवल अन्धकार है

आप ही बताएँ हाईटेक वैज्ञानिक सभ्यता किसकी?
अपनी या ..... उनकी??

भारतीय कालगणना प्रचलन में है
प्रत्येक शुभ संकल्प में इस प्रकार हम कालगणना का स्मरण भी करते हैं।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। ॐ नमः परमात्मने, श्री पुराण पुरुषोत्तमस्य श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य श्री ब्रह्मणे द्वितीय परार्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, अष्टाविंशतितमे, कलियुगे, कलिप्रथम चरणे जम्बूद्वीपे,

भरतवर्षे, भरतखण्डे, आर्यावर्तान्तर्गत ब्रह्मावैवर्तैकदेशे बौद्धावतारे ..... नाम संवत्सरे (उत्तरायणे/दक्षिणायने)..... वासरे ..... नक्षत्रे ..... राशिस्थिते सूर्ये ..... राशिस्थिते चन्द्रे ..... देवराज गुरौ .. .. शुभ करणे ..... शुभ पुण्यतिथौ सकलशास्त्र, श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं ..... गोत्रोत्पन्नोऽहं ..... (नाम)..... देवपूजनं करिष्ये।

इसके अतिरिक्त भारतीय कालगणना प्रचलन में है इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

एक अंग्रेज अधिकारी ने पं. मदन मोहन मालवीय से पूछा कि '' कुम्भ में इतना बड़ा जन सैलाब बगैर किसी निमंत्रण कार्ड के कैसे आ जाता है ? पंडितजी ने उत्तर दिया ''छः आने के पंचांग से ! ''

अपने देश के गाँवों में, शहरों में वनों में, पहाड़ों पर या भारत के बाहर सैकड़ो मील दूर विदेशो में हिन्दू कहीं भी रहे वह पंचांग जानता है। अपने त्यौहार, उत्सव, कुम्भ विभिन्न देवस्थानों पर लगने वाले मेले सभी की तिथियाँ बगैर आमंत्रण, सूचना के उसे मालूम होती है। यही नहीं सौ वर्ष बाद किस दिन कहाँ कुम्भ होगा, दीपावली कब होगी यह भी ज्योतिषी किसी भी समय बता सकते हैं।

पद्मिनीनायके मेषे कुंभराशि गते गुरो।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुंभनामा तदोत्तमम्॥
(सूर्य मेष राशि में और गुरू कुंभ राशि में होने पर हरिद्वार में कुंभ होता है।)

मकोच दिनानाथे वृष राशि स्थिते गुरो।
प्रयागे कुम्भ योगे वै माघ मासे विधुक्षये॥
(मकर राशि में सूर्य, वृषभ में गुरू होने पर माघ मास के कृष्ण पक्ष में प्रयाग में कुंभ होता है।

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्र क्षयेतथा।
गोदावर्यां तदा कुंभो जायतेऽवनिमंडले॥
(कर्क राशि के गुरू और सूर्य हो तथा कृष्ण पक्ष हो तब गोदावरी तट पर नासिक में कुंभ होगा।)

मेष राशि गते सूर्ये सिंह राश्यांबृहस्पतिः।
अवन्तिकायां भवेत् कुंभ सदामुक्तिप्रदायकः॥
(मेष राशि में सूर्य, कुंभ में गुरू हो तब अवन्तिका (उज्जैन) में कुंभ होगा।

पूरे विश्व में जहाँ-जहाँ भी हिन्दू रहते हैं दीपावली, होली, राखी, दशहरा, एक ही तिथि में होंगे। अरब और पश्चिम के त्यौहरों में नक्षत्रों की स्थिति एक जैसी नहीं होती।

डॉ. गोविन्द गन्धे (डी.लिट्. संस्कृत)
प्राचार्य - लोकमान्य तिलक विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

कालगणना में 'अवन्तिका' का महत्त्व

पुरातनकाल से ही भारत ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी देश होकर विश्वगुरू के पद पर प्रतिष्ठित रहा है। यथा - अंकों का आविष्कार, शून्य का आविष्कार, दशमलव का आविष्कार, पायथोगोरस-प्रमेय जो आज प्रचलित है उसका आविष्कार भारत में ही प्रथम हुआ है यज्ञवेदी निर्माण हेतु ज्यामितीय गणना भारतीय है आदित्य व भरद्वाज वैमानिकी के महान् विद्वान् थे। अगस्त्य ऋषि पहले वैज्ञानिक थे जिन्होने कृत्रिम रीति से विद्युत का प्रयोग किया था। अगस्त्य संहिता में निर्माण विधि का उल्लेख इस प्रकार है -

'' मिट्टी का एक बर्तन लीजिए और उसमें शुद्ध ताँबे का टुकड़ा रखिए। बर्तन में नीले थोथे और लकड़ी के कोयले के गीले चूरे को मिलाकर डालें। इसके बाद इस पर पारा मिला जस्ता रखकर बर्तन का मुँह अच्छी तरह ढँक दीजिए। इस मिश्रण से ऊर्जा उत्पन्न होगी।''

हमारे ऋषि-मुनियों ने योग, ध्यान, प्राणायाम एवं समाधि द्वारा सूक्ष्म शरीर से ब्रह्माण्ड की यात्रा करके अन्तर्दृष्टि से देखा एवं परखा। आज सशरीर अन्तरिक्ष की यात्रा करने पर भी विज्ञान ने जो तथ्य सामने रखे हैं - जैसे सौरमण्डल, नवग्रह, अपने इस सौर मण्डल में जैव मण्डल के लिए एकमात्र पृथ्वी पर ही अनुकूल जलवायु पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुका होना, अणु-परमाणु की संरचना, ये सौर वैज्ञानिक तथ्य हमारे भारतीय ऋषि मुनियों ने पहले ही प्रकट कर दिए थे। जैसे - 'यथा पिण्डे तथैव ब्रह्माण्डे'' अर्थात् जिस प्रकार पिण्ड (परमाणु) में रचना है वैसा ही ब्रह्माण्ड में भी है, परमाणु रचना में केन्द्र के चारों ओर आकर्षण -शक्ति द्वारा इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं वैसे ही ब्रह्माण्ड में भी केन्द्र के चारों ओर सूर्य तथा सूर्य के चारों और ग्रह इत्यादि भ्रमण करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि तथाकथित आधुनिक विज्ञान ने हमारे ऋषि-मुनियों के तथ्यों से हटकर कोई नई बात नही बताई है। हमारे पूर्वजों ने अन्तरिक्ष से जब (अन्तर्दृष्टि) के द्वारा पृथ्वी को देखा तो भारतीय भू-भाग की रचना शिव के समान दिखाई दी। ऐसा पुराणों में उल्लेख मिलता है। अर्थात् हिमालय पर्वत शिव जटाओं के समान एवं दक्षिण में पूर्वी घाट तथा पश्चिम घाट पर शिव के चरण, मध्य नाभि देश के स्वरूप में मान्य है।

'' आज्ञाचक्रं स्मृता काशी या बाला श्रुतिमूर्धनि।
स्वाधिष्ठानं स्मृता काञ्ची मणिपुरमअवन्तिका।।''

अवन्तिका को नाभि देश (मध्य) मानकर मणिपूर कहा है। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी में भारत का महत्त्व स्वतः सिद्ध है और उसमें भी मध्यदेश अवन्तिका का और भी अधिक महत्त्व बढ़ जाता है, क्योंकि अवन्तिका से होकर कर्करेखा का गमन करना प्रमुख है।

कर्करेखा क्या है ?

पृथ्वी की अपने अक्ष पर झुकी हुई और इसी झुकाव के कारण ऋतुओं का निर्माण हो रहा है। यदि पृथ्वी अपने अक्ष पर झुकी न होती तो पृथ्वी के जिस भाग में गर्मी होती वहाँ बारह महीनें गर्मी ही रहती है एवं जहाँ शीत होती वहाँ बारह महीने ही ठण्ड रहती। अर्थात् ऋतु परिवर्तन नही होता और जैवमण्डल का विकास अन्य ग्रहों के समान असम्भव हो जाता। पृथ्वी के अक्षीय झुकाव से यहाँ मुख्य रूप से तीन महत्त्वपूर्ण वृत्तों का निर्माण हो रहा है - उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव से 90° डिग्री समान दूरी पर विषुवद्वृत्त बन रहा है जो पृथ्वी को ठीक दो समान भागों में

विभाजित कर रहा है।

1. उत्तरी गोलार्द्ध 2. दक्षिणी गोलाद्ध।

विषुवद्वृत्त से ही उत्तर एवं दक्षिण में समान दूरी पर दो वृत्त और बन रहे हैं। वे हैं दक्षिण में मकर वृत्त एवं उत्तर में कर्क वृत्त। इन्हे उष्णकटिबन्धीय तट भी कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर गोलाकार में एक पट्टिका का निर्माण हो रहा है। जिससे जैवमण्डल का विकास सर्वप्रथम यहीं सम्भव हो सका सूर्य देव की कृपा से। क्योंकि जैवमण्डल के लिय सर्वाधिक अनुकूल वायुमण्डल इसी पट्टिका में पाया जाता है। यहीं से जैव उत्पत्ति होकर पुनः उत्तर एवं दक्षिण की ओर जीव आगे बढ़े और तत्स्थानीय मौसम के अनुसार उनका विकास हुआ। अब चूँकि इन उष्णकटिबन्धीय रेखाओं पर वायुदाब की पेटियों का निर्माण होता है और सम्पूर्ण पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन का करण बनती है। अतः ये रेखाएँ अध्ययन की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में भूभाग न्यून एवं उत्तरी गोलार्ध्द में भूभाग अधिक होने से उत्तरी गोलार्द्ध में जैव चहल पहल सर्वदा अधिक रही है इस कारण कर्करेखा का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है और इसी कर्करेखा का अवंतिका के शीर्ष से होकर गुजरना अवन्तिका के महत्त्व को स्वतः प्रतिपादित करता है।

भौगोलिक एवं खगोलीय विशेषता लिए अवन्तिका को हमारे पूर्वजों ने शून्य रेखांश पर स्थित माना है, कर्करेखा भी यहीं से जाती है। इस प्रकार शून्य रेखांश और कर्करेखा यहाँ पर एक दूसरे को काटती है। यह अवन्तिका की ही विशेषता है। इसलिए ज्योतिर्विज्ञान के प्राचीन सिद्धान्तकारों ने समय गणना, पञ्चाङ्ग निर्माण आदि के लिए अवन्तिका को ही केन्द्र बिन्दु माना है। यहीं के मध्यमोदय पर सम्पूर्ण भारत के पञ्चाङ्गो का निर्माण आज भी हो रहा है। ज्योतिष के प्राचीनतम ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त में शून्य रेखांश का वर्णन इस प्रकार आया है-

राक्षसालय दैवौकः शैलयोर्मध्य सूत्रगाः।
रोहितकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः॥

भास्कराचार्यजी ने भी सिद्धान्त शिरोमणि नामक ग्रन्थ के मध्यमाधिकार में स्पष्ट लिखा है।

यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशांस्पृशत्।
सूत्रं मेरूगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥

जो रेखा लङ्का और उज्जयिनी (अवन्तिका) से होकर कुरूक्षेत्र आदि स्थानों को स्पर्श करती हुई मेरू में जाकर मिलती है उसे शून्य रेखांश कहते हैं। इनमें अवन्तिका का विशेष महत्त्व शून्य रेखांश और कर्करेखा का एक दूसरे को काटना विशेष है, जहाँ स्वयम्भू महाकाल स्थित हैं। हम देखते हैं कि वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में समय गणना के लिये जो महत्त्व ग्रीनविच को दिया गया है वह केवल अंग्रेजी प्रभुता का प्रतीक मात्र है। ग्रीनविच जो लगभग 55° उत्तरी अक्षांश पर स्थित है। वहाँ कभी सूर्य शीर्ष पर नही चमकता है, जबकि अवन्तिका में सम्पूर्ण पृथ्वी के जलवायु का नियमन करते हुए विभिन्न ऋतुओं का निर्माण करती हुई कर्करेखा यहाँ विद्यमान है।

ग्रीनविच एवं अवन्तिका का तुलनात्मक विश्लेषण

अवन्तिका	ग्रीनविच
1. कर्करेखा का शीर्ष बिन्दु अवन्तिका से होकर गुजरता है।	1. 55° डिग्री उत्तरी अक्षांश पर स्थित होने से कर्करेखा से बहुत दूर है।
2. प्राचीनकाल से ज्योतिर्विज्ञान का अध्ययन केन्द्र रहा है।	2. कोई प्रचीन इतिहास नहीं है और न ही ज्योतिर्विज्ञान का केन्द्र रहा है।
3. उष्णकटिबन्धीय तट का अवन्तिका में होना।	3. कोई उष्ण कटिबन्धीय तट न होने से वहाँ की जलवायु केवल शीत प्रधान है।
4. सूर्य उत्तरायण होता हुआ अवन्तिका के शीर्ष पर भी आ जाता है।	4. सूर्य कभी शीर्ष पर न आया है और न कभी आयेगा।
5. उत्तरायण का अन्तिम बिन्दु होकर यहीं से सूर्य दक्षिणायन होकर पुनः लौटने लगता है।	5. 55° डिग्री उत्तर में होने से उत्तरायण के अन्तिम बिन्दु से बहुत दूर होने के कारण सूर्य केवल क्षितिज के इर्द-गिर्द गोल घूमता दिखाई देता है।
6. दिनमान एवं रात्रिमान मानवीय दिनचर्या के अनुकूल अनुपात है।	6. दिनमान बहुत अधिक अथवा रात्रिमान बहुत अधिक होने से मानवीय दिनचर्या के अनुकूल स्थिति नहीं है

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि '' अवन्तिका'' जहाँ से अति महत्त्मपूर्ण कर्करेखा एवं शून्य रेखा का सम्पात हो रहा है ज्योतिर्विज्ञान, खगोलीय एवं कालगणना का प्रमुख केन्द्र होकर विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान आज भी बनाए हुए है।

सम्पूर्ण पृथ्वी पर भारत ही एकमात्र ऐसा भूभाग है, जहाँ जलवायु के प्रत्येक पहलू के दर्शन होते हैं।जैसे भारत के उत्तर में बर्फीला मौसम, मध्य में समशीतोष्णीय है तो दक्षिण में भीषण ऊष्णता की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि भारत उत्तम स्वास्थ्य का परिचायक है। यथा '' पैर गरम, पेट नरम, सिर ठण्डा'' ठीक वैसे ही उत्तरी हिमालय भाल है मध्य नाभिदेश अवन्तिका समशीतोष्ण एवं भारत का ऊष्ण प्रधान दक्षिण भाग शिव- चरण है।

इन्हीं सब विशेषताओं के कारण सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एवं कलाचार्य डॉ. वि. श्री वाकणकर का ध्यान सहज ही अवन्तिका की ओर गया। डॉ. वाकणकर केवल पुरातत्त्व के ही ज्ञाता न होकर खगोलीय विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। उन्होने कर्करेखा और शून्यरेखा के महत्व को जानकर इस ओर सभी का ध्यान आकृष्ट किया और अवन्तिका का महत्त्व पुनः प्रतिपादित करते हुए अवन्तिका के अक्षांश एवं भानुपरमक्रान्ति (कर्करेखा) के तुलनात्मक अध्ययन में यह पाया कि अवन्तिका नगरी के अक्षांश 23°11' है, जबकि भानुपरमक्रान्ति 23°26'' है। अतः यह कर्करेखा का मूल स्थान अवन्तिका में ही नगर से 30 कि.मी. उत्तर में होना चाहिए। बस उनकी अद्भुत खोज का सिलसिला चल पड़ा । इस हेतु आपने महिदपुर, आगर, शाजापुर, नागदा आदि परिवेष्टित स्थानों का निरीक्षण करने के पश्चात् यह पाया कि महिदपुर और उज्जैन के मध्य ही कहीं पर कर्करेखा का होना सम्भावित है । अब वे घोंसला से आगे खेड़ाखजूरिया, जवासियापन्त, इटावा, डोंगला, कीटिया,

मऊड़ी आदि स्थानों पर शङ्कुयन्त्र के माध्यम से कर्करेखा- स्थल खोजते रहे और अन्ततः डोंगला ग्राम से ठीक दो कि.मी. पूर्व में ऐसा स्थान प्राप्त हुआ, जो कर्करेखीय 23°26' उत्तरी अक्षांश एवं शून्य रेखांश (वर्तमान 75°-46 रेखांश) पर स्थित है। बस यहीं प्रतिवर्ष वेध लिया जाने लगा और अन्ततः इसी स्थान को कर्करेखा एवं शून्यरेखा के सम्पात बिन्दु के रूप में स्पष्ट गणितीय पद्धति से एवं शङ्कु यन्त्र से सिद्ध किया। इस प्रकार डॉ. वाकणकर ने ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में एक और अध्याय जोड़ दिया। आज इसी स्थान पर आचार्य वराहमिहिर न्यास, उज्जैन द्वारा डॉ. वाकणकर के नाम से भव्य वेधशाला का निर्माण कार्य चल रहा है।

भविष्य में इस स्थान की विश्व में महत्ता को देखते हुए यह स्थान भौगोलिक एवं ज्योतिर्विज्ञान तथा कालगणना का प्रमुख केन्द्र बने, इस हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

डॉ. रमण सोलंकी
प्रभारी : संग्रहालय एवं उत्खनन विभाग
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

भारतीय कालगणना पद्धतियों में अद्वितीय विक्रम संवत्

दिन रात्रि व्यवस्था चन्द्रकलाह्रास वृद्धिचक्र तथा ऋतुचक्र ये तीन प्रकृति प्रदन्तचक्र काल के सहज मापक हैं तथा किसी भी काल, किसी भी देश, किसी भी सभ्यता के मानव को कालगणना की ओर प्रेरित करने वाले दिव्य घटक और महाकाल के प्रथम पार्षद हैं। जहाँ चन्द्रकला परिवर्तन चक्र हमारे मानस में मास की अवधारणा स्पष्ट करता है तो ऋतुचक्र वर्ष की। स्वाभाविक है कि आद्य अन्वेषकों के लिये जहाँ मास चान्द्र होगा तो वर्ष सौरायूँ तो विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में ज्योतिषीय तत्त्वों (द्वादशारं नहि तज्जराय.....)[1] के उल्लेख से भारतीय ज्योतिष को प्राचीनता स्वयं सिद्ध है तथापि चान्द्रमास तथा सौरवर्ष का प्रयोग भी इसकी प्राचीनता को सङ्केतित करता है। अन्यथा अन्य सभ्यताओं में चन्द्र या सौर किसी एक कालपद्धति को ही प्रयोग में लाया गया। जैसे मिस्र के पञ्चाङ्ग में सौर पद्धति को अधिक महत्त्व दिया गया और 30-30 दिन के 12 मास तथा 5 अतिरिक्त दिवस जो कि देवताओं के जन्मदिन माने जाते हैं। रोमन पञ्चाङ्ग में भी अनेक परिवर्तनों के पश्चात् सायन सौर वर्ष स्वीकार कर उसको असमान 12 मासों में बाँट दिया गया। हिजरी वर्ष चान्द्र ही होने से उसके मास लगभग 32-33 वर्ष में सारा ऋतुचक्र घूम लेते हैं। इसी समस्या को हल करने अकबर हिजरी के अङ्क तथा सौर वर्ष लेकर फसली सन् चलाया जो कि उत्तर भारत में प्रचलित हुआ। शाहजहाँ ने दक्षिण में इसे प्रारम्भ किया परन्तु उसने उत्तर भारत के फसली वर्ष अङ्क न लेकर पुनः तात्कालिक हिजरी अङ्क लिए जिस कारण दक्षिण के फसली वर्ष उत्तर के फसली से दो वर्ष का अंतर पड़ गया।

भारतीय काल गणना पद्धति में सटीकता और वैज्ञानिकता विद्यमान रहने के कारण है। यहाँ ऋतुचक्र की प्रकृति प्रदत्त सुस्पष्टता तथा यज्ञकालार्थसिद्धि हेतु इसकी उपयोगिता जिसके कारण सदैव सतर्कता का भाव विद्यमान रहा।

साधारणतः संवत्सर शब्द वर्ष का पर्याय है परन्तु भारतीय ऋषियों ने वर्षादि हेतु नवविध कालमान की चर्चा की है।

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।[2]

(सु.सि. माना 01)

सूर्योदय से सूर्योदय तक सावन दिन तथा 360 सावन दिनों का एक सावन वर्ष। नक्षत्रमण्डल के एक चक्र का एक नाक्षत्र दिन 360 नक्षत्र दिन का नाक्षत्रवर्ष 360 चान्द्र दिवस (तिथियाँ) अर्थात् 12 चान्द्रमास का लगभग 354 दिनों का एक चान्द्र वर्ष। सूर्य के एक अंश भोग का एक सौर दिवस तथा 360° भोग का सौर वर्ष पूर्व में यह सायन सौर अर्थात् वर्तमान में अंग्रेजी कैलेण्डर के समान 365 दिन 5 घंटे 48मि. 15 से. का मानते होंगे परन्तु सम्प्रति नाक्षत्र सौरवर्ष अर्थात् 365 दिन 6 घंटे 9 मि. 9 से. का प्रयोग करने से लगभग 70-80 वर्ष में एक दिन की दर से हम भी थोड़ा ऋतुचक्र से अन्तरित हो रहे है परन्तु वर्तमान में हमें हिजरी जैसी कोई बड़ी समस्या नहीं है।

मानवीय मास एक पितृ दिवस है। मानवीय वर्ष का दिव्य दिन है। 43, 20,000 मानवीय वर्षों वाली इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर एक प्राजापत्य मान है 1000 चतुर्युगियों वाला एक कल्प ब्रह्मा का दिन और दो कल्प अर्थात् 4 अरब 64 करोड़ मानवीय वर्ष का ब्रह्मा का एक अहोरात्र उनका 360 गुना एक ब्राह्म वर्ष माना

जाता है। बार्हस्पत्य वर्ष दो प्रकार के प्राप्त होते हैं। एक तो बृहस्पति के एक उदय से दूसरे उदय तक अर्थात् लगभग 400 दिन वाले महाकार्तिक आदि वर्ष। दूसरे मध्यम बृहस्पति पर आधारित लगभग 361 दिन की अवधि वाले प्रभव आदि 60 संवत्सर। जो कि पञ्चसंतत्सरात्मक युगव्यवस्था का अग्रिम चरण है। जहाँ 12 युगों में एक संवत्सर चक्र घूम जाता है। हानकालीन चीनी ज्योतिषियों ने भारतीयों के समान माना कि सृष्ट्या में समस्त ग्रह एक साथ थे। सूर्य सिद्धान्त के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक 2 1/2 कलियुग के समान काल पश्चात् मध्यम ग्रह मेषारम्भ में होते हैं[3] चीनियों के अनुसार 59.5779 वर्ष पश्चात् बृहस्पति व शनि आकाश में पूर्व के स्थान पर साथ आ जाते है।[4] सम्भवतः यही कारण हमारी षष्टिवर्षात्मक संवत्सर परम्परा रहा। दूसरे यह बार्हस्पत्य संवत्सर मान सावन वर्ष मान के भी निकट है। इन संवत्सरों का प्रारम्भ माघ मास में होता है। चूँकि उत्तरभारत में हम चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नव विक्रम तथा शक संवत्सर के दिन मान, संवत्सर के नाम का प्रयोग चान्द्र सौर मान के वर्ष भर करते हैं। अतः प्रतिवर्ष 4 1/4 दिनों के अन्तर के कारण लगभग 80 वर्ष पश्चात। संवत्सर दो वर्षारम्भों के बीच में आने के कारण व्यवहार से लुप्त हो जाता है। परन्तु दक्षिण भारत में संवत्सर बार्हस्पत्य न रहकर चान्द्रसौर मान लिये गये । अतः वहाँ लुप्त संवत्सर की आवश्यकता नहीं रही तथा धीरे धीरे उत्तर और दक्षिण भारत के चक्र भी आगे पीछे हो गये और दोनों स्थानों पर भिन्न नामों वाले संवत्सर प्रयोग में आते हैं। चूँकि राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय के ताम्रपट में शक 726 में सुभानु संवत्सर कहा गया है जो कि वास्तव बार्हस्पत्य संवत्सर मान से ही सम्भव है, अतः श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित (भारतीय ज्योतिष पृ. 509) की स्पष्ट मान्यता है कि दक्षिण में संवत्सरों को चान्द्रसौर मान लेना शक 726 के बाद ही कभी हुआ होगा।

यद्यति वर्तमान में ज्योतिष में गणितीय कार्य हेतु शक संवत् का प्रयोग किया जाता है, परन्तु व्यवहार में लगभग सम्पूर्ण भारत में विक्रम संवत् का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग के विषय में शोध पश्चात् प्रो. कीलठान ने अनुमान किया कि सामान्यतः इस काल का गतवर्ष प्रचलित है परन्तु कहीं-कहीं वर्तमान वर्ष का भी प्रचार है। आरम्भ में यह कार्तिकादि रहा होगा परन्तु कालान्तर में शक संवत् के साहचर्य से गुजरात को छोड़ शेष उत्तर भारत में यह चैत्रादि हो गया। 14 वीं सदी तक तो एक ही प्रान्त में दोनों वर्ष चैत्रादि तथा कार्तिकादि प्रचलित रहें। प्रायः कार्तिकादि पूर्णिमान्त तथा अमान्त दोनों रूपों में तथा चैत्रादि प्रायः पूर्णिमान्त ही पाये जाते है। यह संवत् प्रारम्भ में कृत तथा सन् 450 से 850 के मध्य मालवकाल के नाम से जाना गया। विक्रम शब्द का प्रथम प्रयोग विक्रम संवत् 898 के एक लेख में मिलता है। 1050 विक्रमी के एक काव्य में विक्रम संवत् का स्पष्ट प्रयोग किया गया। इन्हीं करणों से अनेक इतिहासकार प्रथम सदीं ईसा पूर्व किसी साहसांक विक्रमादित्य के अस्तित्व को नकारते हैं।इसके पक्ष में वे बेताल पञ्चविंशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशतिका जैसे गल्प साहित्य की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्रथम शती ईसवी के गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित समस्त ग्रन्थों में विक्रमादित्य का स्पष्ट उल्लेख है। सम्प्रति अन्य अनेक ग्रन्थों, मुद्राओं शिलालेखों के आधार पर विक्रम का ईसा. पूर्व प्रथम शती में होना सिद्ध हो गया है।

साथ ही किसी के विषय में प्रचलित गल्प के आ धार पर उसका अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता क्योकिं एक वचन की स्थिति के बिना बहुवचन सम्भव नहीं है बिना स्फुलङ्गि के अग्नि का अस्तित्व नहीं होता कई विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य सिद्ध करते हैं तो यह भी हास्यास्पद है क्योंकि स्वयं चन्द्रगुप्त द्वितीय के पिता समुद्रगुप्त ने अपने काव्य कृष्ण चरित्र में विक्रम का नामोल्लेख किया है[5] फर्ग्युसन ने इसें 54-5 ईस्वी में हर्ष विक्रमादित्य द्वारा चलाया गया माना है, परन्तु कोई अपने समय में 600 वर्ष जोड़कर क्यो संवत्सर प्रारम्भ कर सकता है।

ध्यातत्य हो कि इतिहास का निर्माण सदैव वर्तमान की पृष्ठभूमि में होता है। न कि भविष्य की प्रत्याशा में। किसी नगर में 10 वर्ष से रह रहा कोई युवा 15 वर्ष से रहना सिद्ध करना चाहे तो भी कुछ सम्भव है। परन्तु क्या कोई 25 वर्ष की अवस्था में 50 वर्ष से उस नगर में रहना सिद्धकर सकता है ?

इस संवत् का प्रारम्भ में कृत नाम प्रसिद्ध होने का कारण कई विद्वानों ने इसका कार्तिकादि होने को कहा है। परन्तु उचित तो यह प्रतीत होता है कि विक्रम अपनी प्रजा को कृतयुग सा आनन्द देना चाहते थे। इसलिये उन्होने इसे कृत नाम दिया। मालवागण में प्रचलित होने से यह मालवा कहलाया। तत्पश्चात विक्रम के गुणों को अपने बड़े बूढ़ों से सुनते आये हमारे पूर्वजों ने आदरार्थ इसे विक्रम संवत् कहकर पुकारा और आज भी यह हमें शकारि विक्रमादित्य का पुण्य स्मरण कराता है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 1-164-11
2. सूर्य सिद्धान्त- मानाध्याय श्लो 01
3. शंङ्करबालकृष्ण दीक्षित - भारतीय ज्योतिष पृ. 237
4. डॉ. रजनीकान्त पन्त - प्राचीन सभ्यताओं में विज्ञान एवं तकनीक पृ. 340
5. डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित - आदि विक्रमादित्य पृ. 84

डॉ. शुभम शर्मा
सहा. आचार्य
ज्यो. एवं ज्योतिर्विज्ञान विभाग म.पा.सं.वै.वि.वि.,उज्जैन

कालगणना की आवश्यकता

ज्योतिष शास्त्र में काल की गणना का संबंध भूगोल एवं खगोल दोनो से है। ज्योतिष शास्त्र का संबंध भूगोल गणित, भौतिकी एवं पर्यावरण आदि से साक्षात् संबंध है तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं से भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूप से इसका संबंध है। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रहों की गति की गणना, काल चक्र का निर्धारण वर्षचक्र, ऋतु पर्वों आदि का ज्ञान, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण शुभ एवं अशुभ मुहूर्तो का ज्ञान आदि विषय प्रत्येक मानव के जीवन से संबंध है।

अतः उपरोक्त संदर्भ में यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि वास्तव में काल क्या है। और इस काल के गणना की आवश्यकता क्यों हुई ?

काल :-

काल अर्थात् समय चक्र। जिस प्रकार आकाश अखण्ड है। आकाश में स्थित तारो का समूह आदि अखण्डित हैं। एवं निरन्तर गातिमान है। उसी तरह काल स्वयं अखण्ड है। परन्तु पृथ्वी पर स्थित मनुष्य जीवन में मनुष्यों को विभिन्न प्रकार के नैमित्तिक आदि क्रिया्न्वित कार्यों के लिए समय अर्थात् काल के विभाजन की आवश्यकता हुई।

काल के विभाजन के विषय में सर्वप्रथम सूर्यसिद्धांत में निम्नलिखित श्लोक का उल्लेख है।

लोकानामन्तकृत कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्चते।।

(सूर्यसिद्धांत मध्यमाधिकार 10)

यहाँ काल के संदर्भ में व्याख्या प्रस्तुत है।

काल के दो भेद कहे गए हैं। प्रथम काल लोकों का अंत करने वाला जिसे प्रलय काल भी कहा गया। इसे अनन्त एवं अखंण्ड काल भी कहते हैं। दूसरा काल गणनात्मक या कलनात्मक काल होता है। अर्थात् जिसकी गणना की जा सके। यह खण्डकाल होता है। दूसरा कलात्मक काल के भी दो भेद हैं।

पहला स्थूल एवं मूर्त रूप में होता है। द्वितीय सूक्ष्म एवं अमूर्त रूप में होता है।

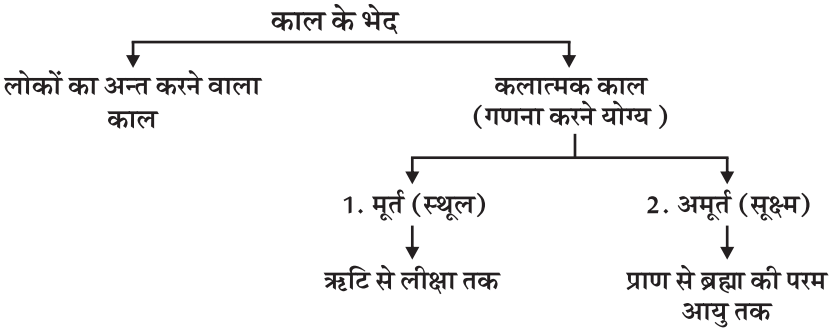

काल की सबसे छोटी इकाइ त्रुटि है।

त्रुटि से लीक्षा तक सूक्ष्म काल है। तथा प्राण से ब्रह्म की आयु पर्यन्त स्थूल काल है।

सूक्ष्मकाल का जो मूर्त रूप है वही व्यवहार में काम में आता है।

सूक्ष्मकाल के अणुरूप में होने से व्यवहार में काम नहीं लेते।

कालमान

स्थूल काल या मूर्तरूप

ब्रहमा 100 वर्ष	=	ब्रह्मा की परम आयु
360 अहोरात्र	=	ब्रह्मा का एक वर्ष
2 कल्प	=	ब्रह्मा की अहोरात्र (दिन रात)
14 मनु	=	1 कल्प
71 महायुग	=	1 मनु
43,20,000 वर्ष	=	1 युग
12 मास	=	1 वर्ष
30 अहोरात्र	=	1 मास (30 दिन)
60 घटी	=	1 अहोरात्र (दिन रात) (24 घंटे)
60 पल	=	1 घटी (24 मिनट)
60 विपल	=	1 पल (24 सैकेण्ड)
6 प्राण	=	60 विपल
प्राण	=	1 प्राण = 10 विपल = 4 सैकेण्ड

सूक्ष्म या अमूर्त काल

लीक्षा	=	1 लीक्षा = $\frac{1}{60 \text{ प्राण}}$ = $\frac{4}{60 \text{ से.}}$
लव	=	1 लव = $\frac{1}{15 \times 60}$ = $\frac{1}{900 \text{ सै.}}$
रेणु	=	1 रेणु = $\frac{1}{900 \times 60}$ = $\frac{1}{5400 \text{ सै.}}$
त्रुटि	=	1 त्रुटि = $\frac{1}{54000 \times 60}$ = $\frac{1}{32,40,000}$

चूंकि ज्योतिष वेदों का अङ्ग है। वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्व है। यज्ञ यागादिक सब समुचित समय व वेला में सम्पन्न किए जाते हैं। इसलिए यज्ञ की क्रियाएँ सर्वथा शुद्ध काल गणना पर आधारित है। अतः काल विधान शास्त्र को ही ज्योतिष शास्त्र कहते हैं।

काल के भेद विभाजन के पश्चात् लोक व्यवहार में मांगलिक यज्ञादि कार्यों एवं प्रतिदिन शुभ एवं अशुभ कर्मों को प्रतिपादित करने के लिये शुभ समय निर्धारण के ज्ञान की आवश्यकता हुई।

और समय के ज्ञान के लिय शुभ एवं अशुभ मूहूर्त की आवश्यकता हुई। मुहूर्तो के निर्माण में पंचाग की आवश्यकता है। मुहूर्तो में पंचाग की प्रधानता है।

बिना पंचांग (तिथि,वार, नक्षत्र, योग, करण) इन पाँचों में से कोई एक अंग हो या चार हो या पाँच हो, के बिना मुहूर्त नही बन सकता है। मुहूर्त काल निर्धारण का आधार सूर्य व चन्द्रमा हैं। सूर्य व चन्द्रमा की गतियों के आधार पर पंचांग का निर्धारण होता है।

इनके निर्धारण के लिये सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों, नक्षत्रों की गतियों का अध्ययन किया गया। ऋतु परिवर्तन, मास, पक्ष आदि का निर्धारण हुआ।

सूर्य एवं चन्द्रमा के अंशात्मक गणितीय अंतर से तिथियों का निर्धारण हुआ

आकाश में स्थित तारों आदि के समूह के विभागों में बाँटा गया। नक्षत्रों, राशि, ग्रहों का विभाजित किया गया। ग्रहों को कक्षा क्रम में विभाजित किया।

ग्रहों की कक्षा क्रम के आधार पर वार का निर्धारण किया गया। इत्यादि।

कंचन तिलवानी
अतिथि प्राध्यापक
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन

खगोलीय गतियाँ और कालगणना

व्यवहारिक रूप से हम जिस कालगणना का उपयोग करते हैं वह कालगणना मुख्य रूप से निम्नलिखित दो खगोलीय गतियों के आधार पर होती है -

1. पृथ्वी का अपने अक्ष (घूर्णन गति) एवं सूर्य के चारों ओर (परिभ्रमण गति) घूमना।

2. चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर घूमना।

पृथ्वी की घूर्णन गति -

पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर 1600 कि.मी. प्रति घंटे की गति से घूमती है। पृथ्वी एक घूर्णन (360° गति) 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकेण्ड (लगभग 24 घंटे) में पूर्ण करती है, जिसे एक दिन कहते है। पृथ्वी अपनी धुरी पर 1° घूमने में लगभग 4 मिनिट का समय लेती है। पृथ्वी के घूर्णनेके कारण सूर्यो दय व सूर्यास्त दृष्टिगोचर होते हैं।

समय मापन की अवधारणा भी पृथ्वी के घूर्णन से जुड़ी हुई है। हम पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव से गुजरते हुए पृथ्वी की सतह पर काल्पनिक वृत्त बनाएँ, जिनका केन्द्र पृथ्वी का केन्द्र हो तथा जो भूमध्य रेखा के लम्बवत हों। इन वृत्तों को देशान्तर रेखाऐं या रेखांश कहतें हैं। ग्रीनविच के बीच से गुजने वाली देशान्तर रेखा कों शून्य रेखांश माना गया है।

शून्य रेखांश से 180° पूर्व तथा 180° पश्चिम में देशान्तर रेखाएँ है। शून्य रेखांश पर स्थित धूपघड़ी जो समय बताती है। उस स्थानीय समय को ग्रीनविच औसत समय (ग्रीनविचमीन टाईम GMT) कहते है। विश्व स्तर पर GMT ही मानक समय है।

अन्य देश शून्य रेखांश (ग्रीनविच देशान्तर) से पूर्व या पश्चिम में स्थित है तथा प्रत्येक देश अपने किसी रेखांश के समय को मानक समय मानता है। जैसे भारत में 82 ½° पूर्वी देशान्तर के समय को मानक समय माना जाता है। अतः 82 ½° रेखांश का स्थानीय समय भारतीय मानक समय (IST) होगा। हम पूर्व में ही बता चुके हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर प्रत्येक 4 मिनिट में 1° घूमती है अतः 82 ½° घूमने में (82 ½ x 4= 350 मिनट या 5 ½ घंटे लगेंगे। यह समय क्षेत्र (टाइम झोन) कहलाता है। भारत का मानक समय (82 ½ रेखांश का समय) ग्रीनविच (शून्य भोगांश) से +5 घन्टे 30 मिनट पर है। इसी प्रकार हम अलग-अलग देशान्तर से वहाँ का टाईम झोन ज्ञात कर सकते है।

जो स्थान ग्रीनविच से पूर्व में होगें उनका टाईम झोन धनात्मक तथा जो पश्चिम में होगें उनका ऋणात्मक होगा।

इसी प्रकार भारत के मानक देशान्तर 82 ½° से जो स्थान पूर्व में होगें उनके लिये समय घटाना तथा पश्चिम के लिये जोड़ना होगा। जैसे - उज्जैन का रेखांश 75 ½° पूर्व भारत में मानकरेखांश से पश्चिम में है। उज्जैन वेधशाला में स्थित धूप घड़ी जो समय बताती है वह उज्जैन का स्थानीय औसत समय (L.M.T.) कहलाता है। इसे भारतीय मानक समय में बदलने के लिए धूप घड़ी (सम्राट् यन्त्र) की दीवार पर स्थिति देशान्तर व बेलान्तर करेक्शन सारणी के माह व दिनांक देखते हुए दिये गये मिनट जोड़ना होगें।

जैसे - जून माह की 21 तारीख को स्थानीय समय (सम्राट् यन्त्र के समय) में 28 मिनट जोड़ने पर भारत का मानक समय प्राप्त हो जाएगा या हमारी घड़ी के समय में से 28 मिनट घटाने पर हमकों 21 जून का उज्जैन का स्थानीय समय प्राप्त हो जाएगा।

इस प्रकार हम पंचांग के लिये अति महत्वपूर्ण स्थानीय समय प्राप्त कर सकते हैं।

पृथ्वी की परिभ्रमण गति -

पृथ्वी 1,00,000 कि.मी. प्रति घण्टे की गति से घूमती हुई 365 दिन 5 घण्टे 48 मिनट 46 सेकण्ड में सूर्य की एक परिक्रमा पूरा करती है। इस प्रकार पृथ्वी एक दिन में लगभग 1° परिभ्रमण करती है जिसके कारण प्रत्येक तारा पहले दिन से 4 मिनट जल्दी उदय होता है।

पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण सूर्य हमको माह के अनुसार राशि बदलता हुआ दिखाई देता है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी अपने अक्ष पर 23 ½° झुकी हुई इस झुकी हुई स्थिति में सूर्य की परिक्रमा के कारण हमें सूर्य की अलग अलग स्थितियाँ एवं मौसम परिवर्तन दृष्टिगत् होते हैं।

इस स्थिति को समझने के लिये हम पृथ्वी की भूमध्य रेखा के समान्तर काल्पनिक वृत्त बनाएँ जिनका केन्द्र पृथ्वी का अक्ष हो। यह वृत्त अक्षांश रेखाएँ कहलाते हैं। पृथ्वी के मध्य की अक्षांश रेखा को विषुवत रेखा या भूमध्य रेखा या शून्य अक्षांश रेखा कहते हैं। शून्य अक्षांश रेखा के उत्तर की ओर 90° तथा दक्षिण की ओर 90° अक्षांश रेखाएँ होती हैं।

शून्य अक्षांश रेखा से उत्तर की ओर 23 ½° उत्तरी अक्षांश रेखा (वास्तविक 23°26'N) को कर्क रेखा तथा दक्षिण की ओर 23 ½° दक्षिण अक्षांश रेखा (वास्तविक 23° 26'S) को मकर रेखा कहते हैं।

विषुवत रेखा, कर्क रेखा व मकर रेखा का अत्यन्त महत्व है। 21 मार्च को सूर्य विषुवत रेखा पर लम्बवत् होता है जिससे दिन व रात बराबर होते हैं। 21 मार्च के बाद सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में प्रवेश करता है। तथा गति कर्क रेखा की ओर दिखती है।

21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् होता है जिससे उत्तरी गोलार्द्ध में दिन सबसे बड़ा तथा रात सबसे छोटी होती है। 21 जून के बाद सूर्य की गति दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर दिखती है। जिसे सायन दक्षिणायन का प्रारम्भ कहते हैं। दक्षिणायन का प्रारम्भ होते ही उत्तरी गोलार्द्ध में दिन धीरे-धीरे छोटे होने लगते हैं। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है।

23 सितम्बर को सूर्य पुनः विषुवत् रेखा पर लम्बवत दिखता है। 23 सितम्बर के बाद सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश करता है। तथा गति मकर रेखा की ओर दिखती है।

22 दिसम्बर को सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् रहता है। जिससे उत्तरी गोलार्द्ध में दिन सबसे छोटा तथा रात बड़ी होती है। 22 दिसम्बर के बाद सूर्य की गति उत्तरी गोलार्द्ध की ओर दिखती है। जिसे सायन उत्तरायण का प्रारम्भ कहते है। 22 दिसम्बर के बाद उत्तरी गोलार्द्ध में दिन धीरे-धीरे बड़े होने लगते हैं। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु रहती है।

इस प्रकार पृथ्वी का 23 ½° झुकी स्थिति में सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण के कारण सूर्य कर्क रेखा से मकर रेखा के मध्य गति करता हुआ दिखाई देता है। तथा ऋतु परिवर्तन होता है। शंकु यन्त्र के माध्यम से उपरोक्त स्थितियों को प्रत्यक्षरूप से देखा जा सकता है। शंकु की परछाईं 22 दिसम्बर को मकर रेखा (सायन मकर), 21 मार्च व 23 सितम्बर को विषुवत् रेखा (सायन मेष या तुला), तथा 21 जून को कर्क रेखा (सायन कर्क), पर गमन करती हुए दिखाई देगी।

चन्द्रमा का परिभ्रमण -

चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर घूमना पंचांग की दृष्टि से अन्यन्त महत्वपूर्ण है।चन्द्रमा का नक्षत्र मण्डल चक्र -27 1/3 दिन तथा एक अमावस्या से द्वितीय अमावस्या या एक पूर्णिमा से द्वितीय पूर्णिमा चक्र -

29 1/3 दिन का होता है।

चन्द्रमा अत्यन्त तीव्र गति से लगभग 30 दिन में पृथ्वी एक परिक्रमा पूरी करता है । इस प्रकार (360°/30=12°) चन्द्रमा एक दिन में लगभग 12° गति करता है।

चन्द्रमा का 12° चलन एक तिथि कहलाता है। चन्द्रमा दीर्घवृत्ताकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। जिससे उसकी गति एक समान न होकर एक दिन में 11° से लेकर 15 ½° तक होती है। चन्द्रमा की 11° गति की स्थिति में तिथि 24 घन्टे से बड़ी होती है तथा 15 ½° गति की स्थिति में तिथि 24 घंटे से छोटी होती है। इस प्रकार एक तिथि चन्द्रमा के 12° चलन पर आधारित होने के कारण 24 घंटे से बड़ी या छोटी हो जाती है। इसी कारण हम पंचांग में दिन के किसी समय से दूसरी तिथि का प्रारम्भ देखते हैं।

हमारी हिन्दू संस्कृति में सूर्य उदय के समय जो तिथि हो पूरे दिन उसी तिथि को माना जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सूर्य उदय के कुछ ही समय तक एक तिथि रहती है। तथा फिर दूसरी तिथि प्रारम्भ हो जाती है। यह दूसरी तिथि अगले सूर्य उदय के पूर्व समाप्त होने पर तिथि क्षय माना जाता है। जैसे - आज सूर्य उदय ½ घंटे तक द्वितीया तिथि थी उसके बाद तृतीया तिथि प्रारम्भ हो गयी। परन्तु कल के सूर्य उदय से ½ घंटे पूर्व तृतीया तिथि समाप्त हो गयी तथा चतुर्थी तिथि प्रारम्भ हो गयी। इस स्थिति में तृतीया तिथि क्षय होगी तथा कल की तिथि चतुर्थी मानी जाएगी। चन्द्रमा के गति की गणना अत्यन्त जटिल होने के कारण प्रातः तिथि सम्बंधी विवाद दृष्टिगोचर होते है।

अमावस्या -

सूर्य तथा चन्द्रमा की एक साथ स्थिति में अमावस्या होती है। इस दिन चन्द्रमा को शून्य डिग्री का माना जाता है। अमावस्या को चन्द्रमा का अन्धकार वाला भाग पृथ्वी की ओर होने के कारण हमें चन्द्रमा दिखाई नहीं देता है।

सूर्यग्रहण -

सूर्यग्रहण हमेशा अमावस्या को होता है क्योंकि अमावस्या को चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वी के मध्य में होते हैं। संयोगवश पृथ्वी से चन्द्रमा और सूर्य का कोणीय आकार एक समान लगभग ½° है। जिससे चन्द्रमा और सूर्य एक ही आकार के दिखाई देते है। जिस कारण हम पूर्ण सूर्यग्रहण की घटना को देख पाते हैं।

परन्तु हम देखते हैं कि सूर्य ग्रहण हमेशा एक समान नहीं होते हैं उसका कारण है चन्द्रमा का दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में परिभ्रमण। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं -

$$\frac{\text{सूर्य का व्यास}}{\text{चंद्रमा का व्यास}} = \frac{1392000 \text{ कि.मी.}}{3476 \text{ कि.मी.}} = 400.46$$

$$\frac{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}{\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की अधिकतम् दूरी}} = \frac{150000000 \text{ कि.मी.}}{409000 \text{ कि.मी.}} = 366.75$$

$$\frac{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}{\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की न्यूनतम् दूरी}} = \frac{150000000 \text{ कि.मी.}}{365000 \text{ कि.मी.}} = 410.96$$

$$\frac{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}{\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की औसत दूरी}} = \frac{150000000 \text{ कि.मी.}}{384400 \text{ कि.मी.}} = 390.22$$

हम देखते हैं कि सूर्य एवं चन्द्रमा के व्यास का अनुपात लगभग 400 है। यदि हम पृथ्वी से सूर्य की दूरी को स्थिर माने तथा पृथ्वी से चन्द्रमा की परिवर्तन दूरी का अनुपात ज्ञात करें। तो चन्द्रमा जब पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर होता है तो दूरी का अनुपात लगभग 367 होता है। जो व्यास के अनुपात से बहुत कम है। इस स्थिति में चन्द्रमा सूर्य को पूरा नही ढक पाता और ग्रहण दिखता है।

चन्द्रमा जब पृथ्वी से न्यूनतम दूरी पर हो तो दूरी का अनुपात लगभग 411 है जो व्यास के अनुपात से अधिक है अतः चन्द्रमा सूर्य को पूर्णरूप से ढक लेगा जिसे खग्रास ग्रहण कहते हैं। परन्तु चन्द्रमा जब औसत दूरी पर हो तो दूरी का अनुपात लगभग 390 है। जो व्यास के अनुपात से थोड़ा ही कम है। जिससे चन्द्रमा सूर्य को पूर्णरूप से नही ढक पाने के कारण कंकण आकृति ग्रहण दिखता है।

तिथि अनुसार चाँद की स्थिति -

अमावस्या के बाद चन्द्रमा का प्रतिदिन लगभग 12° चलन होता है अतः द्वितीया को सूर्य की ओर हसिए के आकार का चाँद हमकों पश्चिम में दिखता है।

चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से 12° लगभग आगे बढ़ते हुए पूर्व की ओर जाता है तथा पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्रमा दिखाई देता है।पूर्णिमा को चन्द्रमा सूर्य से 180° पर होता है। अतः पश्चिम में सूर्य के अस्त होने पर पूर्व में चन्द्रमा उदय होता है।

पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा दूसरी ओर से सूर्य की ओर बढ़ता है अतः सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय का समय बढ़ता जाता है कृष्णपक्ष चतुर्थी के चन्द्रोदय का सभी को अनुभव है।

चन्द्रग्रहण हमेशा पूर्णिमा को होता है क्योंकि पूर्णिमा को ही पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्य रहती है।

राहु-केतु क्या हैं ?

हमने जाना है कि प्रत्येक अमावस्या को चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य रहता है। तथा प्रत्येक पूर्णिमा को पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्य रहती है। परन्तु प्रत्येक अमावस्या व पूर्णिमा को ग्रहण नहीं होते, इसका कारण चन्द्रमा की कक्षा का, पृथ्वी की कक्षा से 5° का झुकाव है। '' ग्रहीय कक्षाएँ क्रान्तिवृत्त के साथ एक लघुकोण का निर्माण करती है। अतः वे इस वृत्त से दो विकर्णतः सम्मुख बिन्दुओं पर काटती है। इन्हें कक्षा के पात कहते हैं।'' पृथ्वी तथा चन्द्रमा की कक्षाएँ जहाँ काटती हैं वह कटान बिन्दु (पात) राहु और केतु कहलाते हैं।

कुण्डली में राहु-केतु का अन्तर 180° होता है। राहु-केतु नाम के कोई पिण्ड न होकर इन्हे छायाग्रह माना गया है।

जब इन कटान बिन्दुओं पर चन्द्रमा, पृथ्वी तथा सूर्य का केन्द्र एक सीध में होते हैं। तो पूर्ण ग्रहण दिखाई देता है। अन्यथा कटान बिन्दु पर जितना भाग एक सीध में होता है। उसी के अनुसार आंशिक या प्रतिच्छाया ग्रहण दिखाई देता है।

पारगमन क्या ?

सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य चन्द्रमा के अतिरिक्त बुध तथा शुक्र ग्रह हैं।

जब बुध या शुक्र ग्रह की कक्षा व पृथ्वी की कक्षा के कटान पर ग्रह एक सीध में हों तो पारगमन की घटना होती है। ''किसी बड़े बडे पिण्ड का चक्कर काटता हुआ कोई लघु खगोलीय पिण्ड पृथ्वी से परिलक्षित किये जाने पर उसकी दृष्टि रेखा में आकर कुछ अवसर पर उसे बाधित कर सकता है। तो यह घटना पारगमन कहलाती है।

हमने हाल में 8 जून 2004 एवं 6 जून 2012 को शुक्र पारगमन की दुर्लभ खगोलीय घटना एवं 9 मई 2016 को बुध पारगमन की दुर्लभ खगोलीय घटना को देखा है।

माह क्या है ?

हम सभी जानते हैं कि आकाश चक्र को 30° -30° की 12 राशियों तथा 13°20' के 27 नक्षत्रों में बाँटा गया है। इन 27 नक्षत्रों के नाम भी दिये गये हैं।

चन्द्रमा एक दिन में लगभग 1 नक्षत्र (13°20') गति करता है। इस प्रकार 27 दिन में 27 नक्षत्र गति करता है। इसी लिये नक्षत्र मण्डल चक्र 27 1/3 दिन का है परन्तु पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण (1 दिन में 1°गति के कारण 27 दिन में 27°गति होगी) द्वितीय अमावस्या दो दिन अधिक $29_{1/3}$ दिन में होती है अर्थात् चन्द्रमा को दो नक्षत्र (लगभग 27°)गति दो दिन में और करना होती है तब पुनः अमावस्या की स्थिति बनती है।

जिस नक्षत्र में पूर्णिमा होती है उसी नक्षत्र के नाम पर माह का नाम होता है।

अधिक मास -

पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर एक पूर्ण चक्र (365 दिन 5 घण्टा 48 मिनट 46 सेकेण्ड) एक वर्ष में होता है। चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर एक पूर्ण चक्र लगभग 30 चन्द्र दिन या तिथि का होता है। जिसे एक माह कहते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में पृथ्वी के एक भगण (एक पूर्ण चक्र) तथा चन्द्रमा के पूर्ण भगणों में 1/3 भगण (10 दिवस) अधिक होते हैं। प्रत्येक तीन वर्ष में इनका सामंजस्य बिठाने हेतु 1/3+1/3+1/3 = 1 माह अधिक मास के रूप में लिया जाता है। अधिक मास का नाम वही होता है। जिस मास (नक्षत्र) में दो पूर्णिमा हों। अतः दोनों माह के नाम एक ही रहते हैं।

इस प्रकार कालगणना में चन्द्रमा एवं पृथ्वी की गति मुख्य आधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. सिद्धांत शिरोमणेः गोलाध्याय : - पं. श्री केदारदत्त शर्मा, मोतीलाल, बनारसीदास, नई दिल्ली।
2. गणित शास्त्र - योगेश कुमार बंसल, भारतीय प्राच्य एवं सनातन विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली।
3. पंचांग गणितम् - पं. कल्याणदत्त शर्मा, श्री वेदमाता गायत्री ट्रष्ट, हरिद्वार।
4. आकाश दर्शन - गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सूर्य- गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. ग्रह गति का क्रमिक विकास- श्री चन्द्र पाण्डे, कृष्णा एकादमी, वाराणसी।
7. शुक्र और उसके पारगमन - एस.पी.पण्ड्या, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली।
8. गोल परिभाषा - गणपति लाल शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
9. भारतीय ज्योतिष यंत्रालय वेधपथ प्रदर्शनक - पं. गोकुल चन्द्र भावन, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
10. ऐसा है ब्रह्माण्ड - हरीश यादव, चिल्ड्रन बुक हाउस, जयपुर

डॉ. राजेन्द्र प्रकाश गुप्त
अधीक्षक
शा. जीवाजी वेधशाला, उज्जैन

महाकाल कालीन विक्रमादित्य
कालगणना

ज्योतिष शास्त्र काल विधान शास्त्र है। भास्कराचार्य ने बताया है कि वेदों में बताएँ गए यज्ञादि कर्मों का सम्पादन करने के लिए काल या समय का ज्ञान सर्वथा आवश्यक है और ज्योतिष द्वारा ही काल ज्ञान संभव है। अतः काल का यथा विभाग ज्ञान प्राप्त करना ज्योतिष का प्रवेश द्वार है।

काल भी स्थूल व सूक्ष्म दो प्रकार का होता है। अर्थात् काल के जिस खण्ड को घड़ी आदि की सहायता से जाना जा सके वह स्थूल या मूर्त काल है। इसके विपरीत जो काल घड़ी या अन्य यंत्रों की सहायता से मनुष्य के लिए ज्ञात होने पर भी अपरिमेय हो वह सूक्ष्म या अमूर्त कहलाता है यह गणितोपयोगी नहीं है। प्राचीन समय में मनुष्य के साँस लेने के समय से लेकर ऊपर की इकाईयाँ मूर्त या स्थूल मानी जाती थीं काल की सबसे सूक्ष्म इकाई 'त्रुटि' मानी जाती थी।

अर्थात एक पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति आराम से जितने समय में साँस ले या एक गुरू अक्षर का बोलने में जितता समय लगे, वह समय प्राण या असु कहलाता है। आधुनिक गणनानुसार प्राण का मान 4 सेकंड के बराबर माना गया है। अतः आजकल ज्ञात व गणितोपयोगी सेकंड प्राण से सूक्ष्म होते हुए भी मूर्त या स्थूल ही है।

त्रुटि के विषय में बताया गया है कि एक कमल दल में सुई आर-पार निकालने में जितना समय लगता है वह त्रुटि है। लेकिन भास्कराचार्य ने अधिक प्रामाणिक ढंग से त्रुटि की कल्पना है। जितने समय में मनुष्य एक बार पलक झपकाता है। उसे निमेष कहते है। एक निमेष का तीसवाँ भाग तत्पर एवं एक तत्पर का सौवाँ भाग त्रुटि है। इतने सूक्ष्म काल विभाग की आवश्यकता गणितादि में नहीं होती। अतः यह सूक्ष्म काल कहलाता है। हमारा प्रयोजन प्राण से प्रारंभ करने पर भी सिद्ध होता है।

4 सेकेण्ड - 1 प्राण
6 प्राण - 1 पल
60 पल - 1 घड़ी
60 घड़ी - 1 दिन- रात (नक्षत्र दिन)
1 दिन - 24 घंटे
1 घंटे - 60 मिनट
1 मिनट - 60 सेकेण्ड
1 सेकेण्ड - 1/4 प्राण
ढाई घड़ी - 1 घंटा, ढाई पल - 1 मिनट, ढाई विपल - 1 सेकेण्ड

सिद्ध हुआ कि घड़ी पलों को घंटा मिनट बनाने के लिये ढाई से भाग दें व घंटे की घड़ी बनाने हेतु ढाई से गुणा कर दें। इसी प्रकार आगे भी 30 नाक्षत्र दिनों का 1 मास, 12 मास - 1 वर्ष समझना सरल है।

दिन भेद - अभी बताया गया है कि 24 घंटे या 60 घड़ी - 1 नाक्षत्र दिन रात होता है। इसी संदर्भ में ज्ञातव्य है कि दिन चार प्रकार के होते हैं तथा ये चारों प्रकार किसी न किसी रूप में व्यवहार में लाये जाते हैं।

1. नाक्षत्र आहोरात्र - यह दिन रात सदैव 23 घंटे 56 मिनट व 4 सेकेण्ड के लगभग होता है।

किसी भी एक नक्षत्र या तारा को निश्चय करके देखिए कि किस समय उदित होता है। उसके उदय का समय घड़ी में देखकर नोट कर लें। वही तारा जब पुनः उदित होगा तब इन दोनों के बीच 23 घंटे 26 मिनट 4 सेंकड के लगभग समय होता है यही दिन रात नाक्षत्र दिन या नाक्षत्र अहोरात्र कहलाता है। इसी तरह अंकशास्त्र में देखें तो विश्व में पूजा पसठ का बड़ा महत्व है। सभी धर्मों में निष्ठा रखने वाले प्रायः माला द्वारा जप करते है। अधिकांश मालाएँ 108 मनकों की होती है। आप पूछ सकते हैं कि मालाओं में इतने दाने ही क्यों रखे गए ? कम या अधिक क्यों नहीं ? इसके पीछे बड़ी सूझ बूझ और रहस्य है। सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय तक के काल का परिणाम 60 घड़ी माना गया है । एक घड़ी में 60 पल और एक पल में 60 विपल होते है । इस प्रकार एक अहोरात्र में 60X60X60=2,16,000 विपल हुए अर्थात् दिन 1,08,000 और रात्रि में 1,08,000 विपल हुए। दशमलव प्रणाली से शून्य अलग किये जायें तो रह गया - 108।

इसी प्रकार सूर्य भी जब राशि - परिभ्रमण में एक चक्र पूरा कर लेता है तो उसे एक वृत्त पूरा करना कहा जाता है । एक वृत्त में 360 अंश होते हैं । सूर्य की एक प्रदक्षिणा के अंशों की कला बनायी जायें तो 360X60=21,600 कला हुई। सूर्य आधे वर्ष दक्षिणायन में। इस प्रकार 21,600 को आधा किया जाये तो 10,800 संख्या प्राप्त होती है।

2. चान्द्र दिन या तिथि - चन्द्रमा व सूर्य की जब युति होती है, तो चन्द्रमा बिल्कुल भी दिखाई नहीं पड़ता है। इसे अमावस्या कहते हैं। तदुपरान्त चन्द्रमा की शीघ्रगति के कारण सूर्य व चंद्र में 12 अंशों का अंतर होने तक एक चान्द्र दिन या प्रतिपदा तिथि बनाती है। जब यह अंतर 180° होता है तो पूर्णिमा कहा जाता है। यह तिथि या चान्द्र दिन होता है।

3. सौर दिन - सूर्य के एक अंश के भोग काल को सौर दिन कहते हैं। सूर्य की गति सदैव समान नही होती है। सूर्य कभी 24 घंटे में 1°अंश या उससे कम- अधिक भी चलता है। अतः वास्तविक सौर दिन कभी 24 घंटे से कम और कभी अधिक होता है। यह न्यूनाधिक्य प्रायः 4 मिनट के लगभग होता है अतः सौर दिन का मध्यम मान 24 घंटे माना गया है।

4. वर्ष भेद - अब यह बात स्पष्ट है कि जितने प्रकार के दिन होते हैं। उतने ही प्रकार के मास तथा वर्ष भी होते हैं। तीस नाक्षत्र दिनों का एक नाक्षत्र मास और 12 नाक्षत्र मासों का एक नाक्षत्र वर्ष होता है। चान्द्र वर्ष 354 दिन के लगभग होता है।

आपने पंचागों में प्रभव, विभव आदि नाम संवत्सरों के पढ़े होंगे। जैसे वर्तमान समय में संवत् 2049 के आदि में पार्थिव नामक संवत्सर है। इसी प्रकार प्रत्येक संवत्सर को नाम दिये जाते हैं। ये संख्या में 60 होते हैं। अतः प्रत्येक 60 वर्षों के बाद इनकी पुनरावृत्ति होती है। यह संवत्सर 361 दिन के बराबर होता है।

प्रचलित वर्षों का ज्ञान - राष्ट्रीय संवत्, ईस्वी सन्, विक्रम संवत्, शक संवत्, फसली सन्, हिजरी सन्, बंगीय सन्, कालम् सन् आदि बहुत से सन्, संवत्, भारतवर्ष में प्रचलित हैं। इसके विषय में संक्षेप में विवरण है।

1. राष्ट्रीय सन् - यह साधारण वर्षों में 22 मार्च से एवं लीप वर्षों में 21 मार्च से प्रारम्भ होता है।नाम चैत्र, वैशाख आदि ही है, लेकिन वे सायन सूर्य संक्रान्ति से प्रारंभ होते हैं। भारत सरकार ने 22 मार्च 1957, चैत्र प्रतिपदा, शक संवत् 1879 से इसे अपना राष्ट्रीय संवत् मानकर व्यवहृत किया है। आज 22 मार्च 2017 है जिसे आज 60 वर्ष पूर्ण हो चूके हैं।

2. ईस्वी सन् - यह अंतर्राष्ट्रीय रूप से प्रचलित है। जनवरी आदि बारह मासों से युक्त यह वर्ष सर्वत्र व्यवहार में लाया जा रहा है। ईस्वी सन् में से 78 घटा देने से 'शक संवत्' आ जाता है। इसी प्रकार इसमें 57 वर्ष जोड़ने से 'विक्रम संवत्' प्राप्त हो जाता है।

3. विक्रम संवत् - महाराज विक्रमादित्य के नाम पर प्रचलित यह वर्ष ईस्वी सन् से 57 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था।

संन्दर्भ ग्रन्थ

- ज्योतिष सर्वस्व
- रावण संहिता

डॉ. प्रदीप पण्ड्या
राजज्योतिषी रिसर्च सेन्टर, उज्जैन

सोढंग के हस्तिलेख

सोढंग ग्राम उज्जैन के भेरूगढ़ के पश्चिम में उन्हेल सड़क पर प्रायः तीन कि.मी. दूर है। यह एक प्राचीन टीले पर बसा है। यहाँ उत्खनन हुआ था। यहाँ से हल्के पीले रंग के पत्थर के हाथी की खंडित घिसी हुई प्रतिमा प्राप्त हुई जो अब विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित है। चुनार पहाड़ी के पत्थर से निर्मित होने की सम्भावना के कारण प्रसिद्ध पुराविद् डॉ. वि.श्री वाकणकर जी ने इस प्रतिमा को मौर्यकालीन माना था।

अब इस प्रतिमा के फोटो लेकर सावधानी से उसकी परीक्षा पुराविद् डॉ. जे.एन. दुबे ने की और कुछ घिसे हुए लेख उस प्रतिमा पर पाये। उल्लेखनीय है कि यह प्रतिमा प्रायः दो हजार से अधिक वर्षों से उस गाँव में खुले में मौसम की मार सहती रही। ग्रामीण लोग उस पर अपने लोहे के हथियार, घिस कर तीखे करते रहे। अतः हाथी प्रतिमा की पीठ काफी घिस गयी है। तो भी उस के कुछ अक्षर आभासित हो रहे हैं। डॉ. जे.एन. दुबे ने उन अक्षरों का वाचन किया। तदनुसार ये लेख ईसवी पूर्व द्वितीय प्रथम शती की ब्राह्मीलिपि में है।वे लेख इस प्रकार हैं।

1. पीठ सम्मुख भाग	इन्द्रदत्त
2. दूसरी ओर पीठ के निम्न भाग पर	गज महा महाराज देव म मद....म
(सफेद मोटे अक्षर)	गजतम महाराज मद विदम.....
3. ऊर्ध्व भाग पर	म विवज इन्द्र महा विरक.....
4. पीठ पर	मद महा मेघ

क. - इस गजलेख पर गजतम लिखा है। गजतम लेख वाली एक अन्य मौर्यकालीन गजप्रतिमा कालसी (उड़ीसा) चट्टान पर उत्कीर्ण है। और धौली में भी चट्टान काटकर हाथी उत्कीर्ण किया गया है। ये दोनों मौर्यकालीन हैं। (वा.श. अग्रवाल, पृष्ट 124)। इस गजतम शब्द को प्राकृत का मानकर संस्कृत में गजोत्तम कहा जाता है। परन्तु गो-तम के समान पूरी तरह से हाथी अर्थ वाला शब्द गज तम भी हो सकता है।

कालसी के गजतम और उज्जैन के पूर्वोक्त संग्रहालय में प्रदर्शित गणपति की सूंड का मोड़ लपेट मिलते जुलते हैं। ईसवी पूर्व प्रथम शती की विक्रम नामांकित यह प्रतिमा गणपति की सर्वप्राचीन प्रतीत होती है।

ख. - (श्री) मद महामेघ ----- लेख से ज्ञात होता है कि यह आदरणीय श्रीमद् महामेघ था। महामेघ के आगे के अक्षर अस्पष्ट हैं। यह सम्भव है कि यह महामेघ वाहन नाम का पूर्व भाग हो। महामेघ वाहन ईसवी पूर्व प्रथम शती के खारवेल राजा महामेघवाहन का नाम भी हो सकता है। क्योंकि इस गजलेख और खारवेल का समय प्रायः आसपास है। इस खारवेल का विस्तृत विवरण उड़ीसा के भुवनेश्वर के निकट के उदयगिरि की हाथीगुम्फा लेख में पाया जाता है। तदनुसार महामेघवाहन प्रतापी और वीर राजा था। भारत के पूर्व में जिस कालखण्ड में खारवेल महामेघवाहन था प्रायः उसी कालखंड में उज्जैन में शकारि राजा विक्रमादित्य था।

ग. - सोढंग गजप्रतिमा पर पूर्वोक्त इन्द्रपत्र नाम अंकित है। कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य से एकदम पहले के नन्द राजा का समकालीन एक पंडित इन्द्रदत्त था जो योगानन्द नाम से पाटलिपुत्र का राजा बना। फिर चन्द्रगुप्त मौर्य राजा हुआ। इनका समय प्रायः ईसवी पूर्व चौथी शती है। परन्तु सोढंग की गजप्रतिमा उससे प्रायः तीन सौ वर्ष बाद निर्मित है। अतः इस पर अंकित इन्द्रदत्त पूर्वोक्त योगानन्द इन्द्रदत्त नहीं हो सकता।

श्यामिलक के पादताडितक भाग (श्लोक 54) में उज्जैन में विद्यमान इन्द्रदत्त का उल्लेख हुआ है। तदनुसार महाभारत युद्ध में भगदत्त के समान इन्द्रदत्त वेश्याओं की खेरी में हाथी को नचा रहा था।

संचारयन् कलभकं गजनर्तकं वा वेश्यांगणेषु भगदत्त इवेन्द्रदत्तम्।

इससे ज्ञात होता है कि इन्द्रदत्त गजप्रेमी, गजविद्या का ज्ञाता और गजनर्तन में दक्ष था। सोढंग प्रतिमा लेख भी गजप्रतिमा पर उत्कीर्ण है। यह इन्द्रदत्त अत्यन्त वीर होने से महावीर था।

पादताडितक में वैद्य हरिचन्द्र, पाटलिपुत्र के महाप्रतीहार भद्रयुध आदि की प्रशंसा प्राप्त होती है। वैद्य हरिचन्द्र साहसांक का समकालीन बताया जाता है। कथासरित्सागर और बृहत्कथा मंजरी के अनुसार प्रतीहार भद्रायुध उज्जैन के विक्रमादित्य का प्रतीहार था। वह प्रतीहार वज्रायुध का पुत्र था।

यह विक्रमादित्य का समवयस्क था। पादताडितक में इन्द्रायुध की दिग्विजय और प्रताप का प्रभावशाली वर्णन देखकर डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने टिप्पणी लिखी कि यह वास्तविक व्यक्ति रहा होगा।

उसी पादताडितक भाण में भद्रायुध का समकालीन पूर्वोक्त इन्द्रदत्त भी वर्जित है। भद्रायुध उज्जैन के राजा विक्रमादित्य का समकालीन था। अतः इन्द्रदत्त भी विक्रमादित्य का समकालीन था। इन्द्रदत्त और महामेघ (वाहन) समकालीन थे। अतः इन्द्रदत्त, महामेघ वाहन और विक्रमादित्य समकालीन रहे होगें।

ईसवी पूर्व द्वितीय प्रथम शती के साँची दानलेखों में दो बार इन्द्रदत्त के नाम हैं। इन्द्रदत्ता नाम भी है वहीं। अतः उस समय ऐसे नाम रखने की परंपरा थी (सांची पृष्ट 191 और 210)। चतुर्भाणी में उल्लेखित कई नाम साँची में प्राप्त होते हैं।इन्द्रदत्त नाम पादताडितक भाण, सोढंग गजप्रतिमा और साँची में प्राप्त होता है। यह महावीर उपाधि वाला महायोद्धा रहा होगा और गजविद्या का विशेषज्ञ रहा होगा।

इस प्रकार सोढंग की गजप्रतिमा ईसवी पूर्व प्रथम शती के विक्रमादित्य की समकालीन हो सकती है। अथवा मौर्यकालीन हो तो उस प्रतिमा पर विक्रमादित्य के युग में लेख अंकित किये गये होंगे।

नोट : सोढंग ग्राम नाम का मूल या तो ताम्रपत्रों का सोद्रंग हो अथवा ईसवी पूर्व का शक षोडाश के नाम पर यह नाम रखा गया। रजुवुल और उसके पुत्र षोडाश का एक एक सिक्का अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में है। इन पितापुत्र को विक्रमादित्य ने हराया था। रजुवुल का सिक्का ताँबे का है।और षोडाश का प्रोटीन का अतः षोडाश कमजोर शासक रहा।

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
निदेशक - महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन
डॉ. जे.एन. दुबे
पुराविद्

भारतीय इतिहास के आलोक का आदित्य : विक्रमादित्य

भारतीय चिंतन परम्परा में वेद और लोक दोनों को प्रमाण माना गया है। जहाँ किसी प्रसंग में वेद या शास्त्र मौन दिखाई देता है, तो लोक ही प्रमाण माना गया है। इतिहास के अध्ययन में भी यह सूत्र पूर्णतः अनुकरणीय है। भारतीय इतिहास में महान् सम्राटों और राजाओं की परम्परा रही है, जिनमें अजातशत्रु, उदयन, चंडप्रद्योत महासेन, चंद्रगुप्त मौर्य, देवानामप्रिय अशोक महान आदि महत्वपूर्ण है। विदेश के शासकों में भी शंकर इखनातून, हम्मूराबी, तूतनखामन, सुलेमान और सुल्तान के साथ ही कई ग्रीक और रोमन शासक जैसे पेरिक्लीज, जूलियस सीजर आदि उल्लेखनीय हैं। इन शासकों ने अपने शासनकाल में इतिहास के साथ ही लोक के हृदय पर भी राज्य किया है। भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य ऐसे ही महान शासक हैं, जिन्होने गणतंत्र, लोक कल्याण, न्याय व्यवस्था और व्यापार व्यवस्था के मूलभूत सुधार में अद्भुत योगदान दिया है। भारतीय इतिहास यात्रा में विक्रमादित्य व्यक्तिगत संज्ञा के साथ बाद की परम्परा में अन्य राजाओं के लिए विरुद (उपाधि) के रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः भारतीय इतिहास में विक्रमादित्यों की अनवरत परम्परा रही है। विक्रमादित्य का यह विस्तार प्रथम शती ई.पू. से लेकर मुगलकालीन हेमचंद्र विक्रमादित्य तक फैला हुआ है।

भारतीय इतिहास में जनश्रुति और अन्य साक्ष्यों के माध्यम से प्रथम विक्रमादित्य का उल्लेख ई.पू. प्रथम शती 57 से मान्य है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि विक्रमादित्य विरुद का उपयोग प्रायः उन्हीं राष्ट्र नायकों के साथ हुआ है, जिन्होने विदेशी शक्तियों, संगठनों और राजाओं को अपने पराक्रम से परास्त कर देश के बाहर खदेड़ने का प्रयत्न किया है। विक्रमादित्य के साथ अवंति जनपद (उज्जयिनी) और विक्रम संवत् का संबंध घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। प्रथम विक्रमादित्य ने मालव क्षेत्र से शकों को पराजित कर विजय प्राप्त की थी और संवत् का प्रवर्तन किया था, जिसे आज हम विक्रम संवत् के नाम से जानते हैं। विक्रमादित्य गणराज्य के आदर्श संस्थापक होने के साथ राजतांत्रिक श्रेष्ठ न्याय प्रणाली के प्रवक्ता, प्रजावत्सल राजा, दानवीर, लोक कल्याणकारी राज्य के संस्थापक राजा के रूप में भारतीय इतिहास में मान्य हुए। इस सम्राट् ने प्राचीन विश्व व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र उज्जैन को बनाया है।

विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता को लेकर अनेक भ्रांतियां भारतीय इतिहास में जुड़ी हैं, कारण कि विक्रमादित्य के इतिहास से जुड़े पुरातात्विक प्रमाणोंऔर साक्ष्यों का अभाव है। मालवा प्रांत जो आज मध्य भारत में स्थित है। वह आज से 2000 वर्ष पहले पंजाब के इलाके में बसता था। वहीं मालव जाति भी निवास करती थी। यह सही है कि प्रथम विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर संवत प्रवर्तन किया, यह संवत् पहले कृत, फिर मालव और सबसे अंत में विक्रम संवत् के रूप में प्रचलित हुआ। विक्रम संवत् की पहली सूचना भारतीय इतिहास में नवीं शताब्दी में मिलती है। ईसा पूर्व प्रथम विक्रमादित्य से संबंधित साक्ष्य का पता राजा हाल की गाथासप्तशती में मिलता है। मेरुतुंगाचार्य रचित पद्मावली (पट्टावली) तथा थेरावली के अनुसार उज्जैन के शासक गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रम ने शकों से राज्य छीना था। थेरावली में प्रद्योतों, नंदों, मौर्यें से लेकर पुष्यमित्र तक के इतिहास की चर्चा है। प्रबंधकोश एवं शत्रुंजय से भी पुष्टि होती है कि महावीर के निर्वाण के 470 वें वर्ष में अर्थात् ई.पू. 57 वर्ष में विक्रम ने शकों को हराया था। जैन श्रुति कालकाचार्य की कथा से भी विक्रम का साक्ष्य प्रमाणित है। गर्दभिल्ल ने जैन कालकाचार्य की बहन सरस्वती से बलात्कार किया तब आचार्य कालक सुदूर पश्चिमोत्तर में शकों से मिला और गर्दभिल्ल को परास्त कर शकों ने अपना राज्य मालवा पर कायम किया।

कालक रनिवास से अपनी बहन सरस्वती को लेकर प्रतिष्ठान (पैठण) के राजा सातवाहन के राज्य में चला गया। सत्रह वर्ष बाद गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रम ने पुनः शकों को परास्त कर मालवा और अवन्ती को शकों से मुक्त किया।

पंजाब में मालवगण ईसा पूर्व तीसरी सदी से ही क्षुद्रकगण के साथ निरन्तर शत्रुओं से लोहा ले रहे थे। इनमें सिकन्दर सबसे प्रमुख था। ग्रीकों के सतत् आक्रमण से मालवगणों को पंजाब से राजपूताने तक आना पड़ा। मालवों के तीर से ही सिकन्दर घायल होकर मध्य एशिया होता हुआ बेबिलोन में मृत्यु को प्राप्त हुआ। कालान्तर में मालवगण गुप्त काल और उसके बाद राजस्थान होते हुए गुजरात और मध्य भारत के इलाकों में आ बसे थे। शकों को पराजित करने के कारण ही विक्रमादित्य शकाारि कहलाए, लेकिन यह विरुद गुप्तकालीन चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के द्वारा शकों पर की गई विजय से जुड़ा है। प्रथम शती ईसा पूर्व विक्रमादित्य ही संज्ञा रूप विक्रम थे। बाद के राजाओं और सम्राटों के लिए ये शब्द विरुद के रूप में प्रचलित हुआ। स्कंदगुप्त के लिए क्रमादित्य, कुमारगुप्त के लिए महिन्द्रादित्य आदि विरुद चल पड़े, लेकिन विदेशी शत्रुओं से लोहा लेने वाले समुद्रगुप्त के लिये इस विरुद का प्रयोग नही हुआ।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल तथा डॉ. स्टेनकोनों दोनों ने प्रथम विक्रमादित्य को जनश्रुति और शक, सातवाहनों के इतिहास के आधार पर सिद्ध किया है। जैन, संस्कृत और प्राकृत तीनों साहित्य में विक्रमादित्य का उल्लेख है। कश्मीरी कवि गुणाढ्य की बढकहा (वृहत्कथा) में विक्रम की चर्चा है जो पैशाची प्राकृत में लिखी गई। गुणाढ्य की वृहत्कथा अब उपलब्ध नहीं है। लेकिन सोमदेव भट्ट के कथा सरित्सागर में विक्रम की कथा मिलती है। मिस्त्र निवासी अज्ञात ग्रीक नाविक की डायरी ''पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी'' में उज्जैन का उल्लेख ओजेन के रूप में मिलता है। इतना ही नही उज्जैन के पास स्थित आगर और आष्टा जैसे कस्बों का जिक्र भी इस डायरी में हुआ है। उज्जैन के एक महत्वपूर्ण क्षत्रप चेष्टन के विक्रमादित्य होने की संभावना भी तलाशी जा रही है। ग्रीक इतिहासकार टॉलेमी '' ओजेन ऑफ डिआस्टोनिज'' चेष्टान को ही मानता है। इस दृष्टि से चेष्टन कम महत्वपूर्ण नहीं है। डॉ. सिल्वाँ लेवी ने एक प्राकृत पद्य के आधार पर माहिष्मती (महेश्वर) को सौवीरों के संदर्भ में अवन्ती जनपद का केन्द्र बताया था।

अश्वघोष ईसवी प्रथम सदी कुषाण नरेश कनिष्क का समकालीन था। उसके काव्य पर कालिदास का प्रभाव है, ऐसा मत कुछ विद्वानों का है, इनमें पंडित बलदेव उपाध्याय प्रमुख हैं। विक्रम का जहाँ मालवा और उज्जैन से संबंध निर्विवाद है वहीं उनके नवरत्नों में महाकवि कालिदास की चर्चा भारतीय संदर्भों में निरन्तर होती है कालिदास के शाकुन्तल का मंचन किसी राजा संभवतः विक्रम की '' अभिरूप भूयिष्ठा'' परिषद में हुआ था, इससे यह प्रमाणित है कि कालिदास का संबंध विक्रम की नवरत्न सभा से था। कालिदास के विक्रमोर्वशीयम नाटक में भी शीर्षक में ही विक्रम मौजूद है। मालविकाग्निमित्रम् नाटक में भी शुंगकालीन राजा अग्निमित्र नायक है। कई विद्वान कालिदास को शुंगकालीन भी मानते हैं। महाकाव्य रघुवंश के इंदुमति स्वयंवर में अवंतिनाथ को विक्रम मानना काल विरुद्ध दोष होगा। इलाहबाद में समुद्रगुप्त पर हरिषेण की प्रशस्ति (345 ई.), मंदसौर सूर्य मंदिर वत्सभट्टि का अभिलेख (473-474 ई.) गुप्तकालीन सम्राटों के ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध हैं, वैसे प्रथम विक्रमादित्य के नही मिलने के कारण उनकी ऐतिहासिकता पर आज भी संदेह बना हुआ है, जबकि इतिहास और लोक के साक्ष्य उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

भारतीय इतिहास, लोकजीवन और सांस्कृतिक विरासत में विक्रमादित्य का अभूतपूर्व योगदान है। उन जैसे विलक्षण राजा भारतीय इतिहास में गिने चुने ही हुए हैं। पुरातात्विक साक्ष्य न मिलने के बावजूद विक्रमादित्य की महिमा यत्किंचित कम नही होती। उनकी महिमा को प्रतिपादित करने में निम्नांकित संस्कृत पंक्तियां पर्याप्त हैं।

यत्कृतं यन्न केनापि, यद्दत्तं यन्न केनचित्।
यत्साधितमसाध्यं च विक्रमार्केण भूभुजा।
(जो विक्रम ने किया दूसरा कोई कर न सका, जो विक्रम ने दिया वो दूसरा कोई दे ना सका,
जो विक्रम ने साधा वह कोई दूसरा साध नही पाया)

सा रसवत्ता विहता नवका विलसंति चरति नो कंकः
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्यस्य (वासवदत्ता - सुबंधु)

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्राचीन भारत का इतिहास - डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
2. प्राचीन भारत का इतिहास- डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ. ए.बी. कीथ
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास- आचार्य बलदेव उपाध्याय
5. विक्रम स्मृति ग्रंथ- 1943
6. मालवा जनपद और अवन्ति - पं. सूर्यनारायण व्यास
7. कालिदास और उनका युग - डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
8. कालिदास युगीन भारत - डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
9. मध्यप्रदेशम् नमामि- डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
10. गाथा सप्तशती - राजा हाल
11. मेरुतुंगाचार्य एवं कालकाचार्य की गाथा
12. पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी
13. इतिहासकारों के मत - डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल, स्टेनकोनो, डॉ. सिल्वाँ लेवी
14. कालिदास ग्रंथावली - पंडित सीताराम चतुर्वेदी

डॉ. अरुण वर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन

अवन्ती गौरव संवत् प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य

पुण्यनगरी अवन्ती की प्राचीनता एवं प्रसिद्धी असंदिग्ध है। यह सात मोक्षदायिनी पुरियों में से एक है, चार कुम्भों से एक (सिंहस्थ) यहाँ आयोजित होता है, अनेक महान राजाओं का यहाँ शासन रहा तथा अनेक विभूतियाँ यहाँ से जुड़ी रहीं, परन्तु तीन नाम ऐसे हैं कि वे अवन्ती से इतना तादात्म्य रखते हैं कि इस नगरी की वे पहचान बन गये हैं। वे नाम हैं महाकाल, विक्रमादित्य एवं कालिदास महाकवि कालिदास विक्रमादित्य के समकालीन माने जाते हैं। ज्योतिर्विदाभरणकार कालिदास ने ग्रन्थ के उपसंहाराध्याय में 14 श्लोकों में विक्रमादित्य के राज्य का वर्णन किया है।[1] 10 वें (श्लोक 07-20) श्लोक में वह विक्रमादित्य के नवरत्नों की चर्चा करता है।

''धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंहशङ्कु -
र्वेतालभट्ट घटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।

विक्रमादित्य की सेना तथा दिग्विजय का वर्णन कर वह कहता है।

''यद्राजधान्युज्जयिनी महापुरी
सदा महाकालमहेशयोगिनी।
समाश्रयि प्राण्यपवर्गदायिनी
श्री विक्रमार्कोऽवनिपो जमत्यपि।।16।।

यो रुक्मदेशाधिपतिं शकेश्वरं
जित्वा गृहीत्वोज्जयिनीं महाहवे।
आनीय सम्भ्राम्य मुमोच यत्त्वहो
स विक्रमार्कः समसह्यविक्रमः।।17।।

''तस्मिन् सदाविक्रममेदिनीशे
विराजमाने समवन्तिकायाम्।
सर्वप्रजामङ्गलसौख्यसम्पद्
बभूव सर्वत्र च वेदकर्म।।14।।

अर्थात् महाकालनगरी मोक्षदा उज्जयिनी नामक महापुरी जिसकी राजधानी है, जिसने रुक्माधिप शकेश्वर को जीतकर उज्जयिनी में घुमाकर मुक्त कर दिया ऐसा जो सहिष्णु तथा पराक्रमी है, जिसके राज्य में प्रजा सुखी है ऐसे विक्रमादित्य की सदा विजय हो।

यद्यपि ग्रन्थकार ने स्वयं को रघुवंशादि का कर्त्ता (महाकवि) कालिदास सिद्ध करने का प्रयत्न किया है परन्तु भाषा तथा शैली के आधार पर अध्ययन करने पर यह उक्ति सहज ही तष्टयहीन प्रतीत होती है। ग्रन्थ में उद्धृत क्रान्तिसाम्य की स्थिति के आधार पर शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने इसका रचनाकाल शक 1164 निश्चित किया है।[2] यह विक्रमादित्य की ही महत्ता है कि उनके 1200-1300 वर्ष पश्चात् का कोई कवि स्वयं को विक्रमादित्य का समकालीन सिद्ध करना चाहता है। चूँकि ज्योतिष में आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थ पूर्व से ही

प्रचलित थे अतः उसने स्वयं को वराहमिहिर की अपेक्षा कालिदास सिद्ध करने का प्रयास किया।

युधिष्ठिर आदि संवत् प्रवर्तकों के मध्य विक्रमादित्य का उल्लेख हुआ है।[3] विक्रम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विक्रम संवत् 898 के एकलेख में मिलता है। उससे पूर्व यह कृत अथवा मालव संवत् के नाम से जाना जाता रहा। प्रोफेसर कीलहार्न के अनुसार प्रारम्भ में यह कार्तिकादि था परन्तु शकवर्ष के साहचर्य के कारण नर्मदा के उत्तर में धीरे धीरे चैत्रादि हो गया। इस काल की 14 वीं शताब्दी तक एक ही प्रान्त में दोनों परम्पराएँ थी। विक्रम संवत् शब्द से भी जाना जाता है।[4]

ज्योतिष के ग्रन्थों में शालिवाहन शक का प्रयोग शक नाम से किया जाता है। इस आधार पर तथा विक्रम नाम का उल्लेख बाद में मिलने के कारण कतिपय विद्वान् विक्रमादित्य तथा उनके संवत् की प्राचीनता में सन्देह प्रकट करते हैं। कईयों ने गुप्तशासक चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य माना है। कुछ के अनुसार हर्ष विकमादित्य द्वारा अपने काल में 600 वर्ष जोड़कर विक्रम संवत् का प्रारम्भ करना कहा है। जिसे अनेक विद्वानों ने अमान्य किया है।[5] भला बिना आधार के कोई अपने समय को 600 वर्ष पूर्व का ही क्यों सिद्ध करना चाहेगा। दूसरे ज्योतिष में शक का प्रयोग करने का कारण है उसका चैत्रादि होना। चूँकि ज्योतिष में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को वर्षारम्भ माना गया है। अतः कार्तिकादि विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं किया गया। इससे विक्रम संवत् का महत्त्व कम नहीं आँका जा सकता है।

विक्रमादित्य का स्वयं के संवत् को मालव नाम देना उनके क्षेत्र प्रेम को दर्शाता है। विक्रम के पूर्व तथा पश्चात् अनेक शासकों ने अवन्ती पर शासन किया परन्तु यहाँ के जनमानस पटल पर कोई और इतना स्थापित नहीं हो पाया कि जितना प्रेम और सम्मान विक्रम को मिला और आज भी मिलता है।

चाहे माँ हरसिद्धी के समक्ष निजशीर्ष दान कर देने की लोकमान्यता हो अथवा 'वेताल पञ्चविंशतिका' तथा 'सिंहासन द्वात्रिंशतिका' जैसे कथानक, अवन्ती एवं विक्रम के नैकट्य को प्रतिपादित करते हैं।

यद्यपि विक्रम के पूर्व ही अवन्ती धार्मिक तथा व्यापारिक नगरी के रूप में स्थापित हो चुकी थी। विक्रम के पूर्व ही उसका राजनैतिक महत्त्व इतना था कि मौर्य सम्राट् बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को यहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया था।[6] तथापि विक्रम काल में यह नगरी अधिक गौरवान्वित हुई। शुङ्ग शासकों द्वारा विदिशा को अधिक महत्त्व दिया गया। तत्पश्चात् विक्रमादित्य के उत्तम शासन के फलस्वरूप उज्जयिनी ने पुनः अधिक सम्मान प्राप्त किया। तभी तो महाकवि कालिदास मेघदूत में कह उठे कि मेघ तुम्हारा मार्ग यद्यपि टेड़ा होगा तथापि उज्जयिनी के प्रासादशिखरों के परिचय से विमुख न होना -

''वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्मभूरुज्जयिन्याः।[7]

महाकवि ने उज्जयिनी के रत्न बाजार तथा महाकाल की आरती का भी भव्य वर्णन किया है।[8]

विक्रम काल में यहॉ विद्या का स्तर कितना उन्नत था इसका पता राजशेखर की उक्ति से लगता है कि उस विक्रम साहसाङ्क के काल में स्त्रियाँ भी संस्कृत बोलती थीं (प्राकृत नहीं)।

''श्रूयते चोज्जयिन्यां साहसाङ्कों नाम राजा। तेन च
संस्कृतभाषात्मकमन्तःपुर एवेति समानं पूर्वेण''[9]

विक्रम के पश्चात् भोज के पिता सिन्धुराज के काल तक उज्जयिनी का महत्त्व बना रहा, परन्तु भोज द्वारा धारा नगरी को राजधानी[10] बना लेने के पश्चात् यहाँ का वैभव फीका पड़ने लगा, ऐसा प्रतीत होता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अवन्ती ओर विक्रमादित्य परस्पर पूरक प्रतीत होते हैं।आज भी यहाँ की

अनेक परम्पराओं में विक्रमप्रेम की झलक मिलती है। जैसे यहाँ मान्यता है कि विक्रमादित्य के पश्चात कोई भी राजा यहाँ रात्रि त्यतीत नहीं करता, अन्यथा उसके साथ अनिष्ट होता है। यहाँ के अनेक मन्दिरों तथा प्राचीन स्थलों का सम्बन्ध लोकपरम्परा, द्वारा विक्रम से माना जाता है निश्चय ही विक्रमादित्य अवन्ती के गौरव है।

सन्दर्भ :-

1. कालिदास - ज्योतिर्विदाभरण 22/7-20
2. शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित - भारतीय ज्योतिष पृ 620
3. युधिष्ठिरौ विक्रम शालिवाहनौ ...
4. शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित - भारतीय ज्योतिष पृ. 490-91
5. बाबूलाल जोशी - विक्रम ज्योतिष विशेषांक पृ. 11-20
6. भगवतीलाल राजपुरोहित - उज्जयिनी और महाकाल पृ. 51
7. कालिदास मेघदूत 1/28
8. वही श्लो. 33, 38
9. राजशेखर कात्यमीमांसा अ. 10 पृ. 111
10. भगवतीलाल राजपुरोहित - उज्जयिनी और महाकाल पृ. 59

डॉ. शुभम शर्मा
सहायकाचार्य
ज्योतिष एवं ज्योतिर्विज्ञान विभाग
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन

विक्रमादित्य के कालिदास एवं उनका उज्जयिनी प्रेम

''सा रम्या नगरी, महान् स नृपतिः, सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्ध परिषत्, ताश्चन्द्रबिम्बाननाः
उन्मत्तः स च राजपुत्र- निवहः, ते वन्दितः, ताः कथाः
सर्वे यस्य वशादगात् स्मृति पथं, कालाय तस्मै नमः
(भर्तृहरि)

वह जगमगाती राजधानी। वह महान् सम्राट्।
वह सामन्तों का समूह। वह बड़े बडे कला कोविदों से विभूषित राज दरबार। वे चन्द्रमुखी ललनाएँ, वह मदोन्मत्त राजकुमारों का झुण्ड। वे प्रशस्ति पाठक चारण। वे बातें वह सब कुछ जिसकी कृपा से विस्मृति के गहरे गर्त में डूब गया, उस काल भगवान को बार-बार नमस्कार है।

भर्तृहरि की उक्त सूक्ति में सम्राट् विक्रमादित्य के काल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अलौकिक वर्णन है। विक्रमादित्य की यश गाथा का यशोगान समस्त भारतभूमि की जन जन की प्रतिदिन की जीवन चर्या का अभिन्न अंग रही है किन्तु उनकी ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने में ही सारी ऊर्जा का प्रयोग होता रहता है। यद्यपि विक्रमादित्य एक राजा की तरह नही अपितु भगवान की तरह जन जन में व्याप्त है, जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है, उनके नवरत्नों की उपादेयता व कीर्ति गाथा उनके अस्तित्व का प्रमाण है।

सम्राट् विक्रमादित्य की यश गाथा, भविष्य पुराण, कथा सरित्सागर, वृहत्कथामंजरी, नवसाहसांक चरित, प्रबन्धचिन्तामणि, ज्योतिर्विदाभरणम्, कालकाचार्य-कथानक, विक्रमार्कचरितम् आदि अनेक ग्रन्थों में समाहित है।

विक्रमादित्य के नवरत्नों में महाकवि कालिदास, सम्राट् विक्रमादित्य के प्राणप्रिय कवि मित्र थे। रघुवंश में द्वारपालिका सुनन्दा इन्दुमति को दर्शनीय अवन्तिनाथ का वर्णन करते हुए कहती है।

''अवन्ति नाथोऽथमुदग्रबाहुर्विशालवक्षा स्तनुवृत्तमध्यः।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णते जास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति।।

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किलचन्द्रमौलेः
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।।
अनेक यूना सह पार्थिवेन भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रा तरङ्गानिल कम्पितासु विहर्तुमुद्यान परम्परासु।।

(रघु 06 स. 31-36)

अर्थात् - अवन्तिनाथ को विश्वकर्मा ने अपने ''चक्रभ्रम'' पर चढ़ाकर इनके सौन्दर्य को यत्नपूर्वक चमकाया है। ये भगवान् 'चन्द्रमौलि- महाकाल' के निकट रहते है। हे इन्दुमति ! इस युवा राजा के ऊपर तुम्हारी कुछ प्रीति हो तो सिप्रा की तरङ्गो से उठे हुए पवन से कम्पित उद्यान श्रेणी में विहार करो

उपरोक्त वृत्तान्त महाकवि कालिदास की सम्राट् विक्रमादित्य के प्रति प्रतीति एवं उज्जयिनी के प्रति अगाध प्रेम दर्शाता है।

महाकवि कालिदास का उज्जयिनी के प्रति अनुराग 'मेघदूत' में देखने को मिलता है। मेघ को उज्जयिनी का मार्ग टेढ़ा होते हुए भी जाने को कहते हैं।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थि तस्योत्तराशां
सौधोत्संग प्रणयिविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः ।। (3)
(पूर्वमेघ 29)

यहाँ के लोग उदयन की कथा को जानते हैं।-

'' प्राप्यावन्तीमुदयन कथा कोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टा मनुसरपुरीं श्री विशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूवे सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिवदिवः कान्तिमत् खंडमेकम्।।
(पूर्वमेघ 32)

हे मेघ तुम धन धान्य से भरी हुई उस विशाला नगरी की ओर चले जाना जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ। जहाँ के बड़े बूढ़े लोग, महाराज उदयन की कथा भली प्रकार जानते बूझते हैं। वह नगरी ऐसी लगती है मानो स्वर्ग में अपने पुण्यो का फल भोग चुकने वाले पुण्यात्मा लोग, पुण्य समाप्त होने से पहले ही अपने बचे हुए पुण्य के बदले, स्वर्ग का एक चमकीला भाग लेकर उसे अपने साथ धरती पर उवार लाए हों।

उज्जयिनी के प्रति यह अगाध प्रेम और उनकी कल्पना अद्भुत है। कहा गया है -

(''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति।'')

अर्थात् - स्वर्ग सुख भोग चुकने पर स्वर्ण का सुन्दर दुकड़ा ले आए जो उज्जयिनी है।

महाकाल मन्दिर का भी वर्णन करते हुए महाकवि मेघ को महाकाल दर्शन की ओर ईंगि करते है गन्धवती नदी की ओर से आने वाला पवन इस मंदिर के उपवन को बार बार झुला रहा होगा।

क्षिप्रा, गन्धवती, गंभीर का वर्णन क्षिप्रा के अति प्राचीन एवं गंगातुल्य होने का प्रमाण भी है।

''विष्णु देहात् समुत्पन्ने ! त्वं पावनाशिनी'' पंचगंगाओं में एक क्षिप्रा भी मान्य है। अवन्तिका को विष्णु का पद कमल कहा है। और गंगा विष्णुपदी है अतः क्षिप्रा को गंगा कहना नितान्त उचित है। पुराणों में वर्णन है।-

शिव सर्वत्र पुण्यास्ते ब्रहत्यापहारिणी।
अवन्त्यां सविशेषेण क्षिप्रा युत्तरवाहिनी।।

तथा संगम नील गंगाया यावद् गन्धवती नदी।
तयोर्मध्ये तु सा क्षिप्रा देवानापि दुलर्भ।।

स्कंद पुराण के अवंति खण्ड में वर्णन है कि अंवतिका क्षेत्र में चार पवित्र नदियाँ होती थीं -

शिप्रा, नीलगंगा, गंधवती और नवनदी। इस नगरी में चार नदियाँ, सात सागर, 28 तीर्थ तथा 84 महादेव हैं।

नीलगंगा - वर्तमान में जूना अखाड़ा का पेशवाई स्थान है। रेल्वे लाईन के दूसरी ओर स्थित है।

गंधवती और नवनदी - छोटी नदियाँ थीं जो शिप्रा नदी में ही विलीन हो जाती थीं। गन्धवती को कान्ह नदी भी कहा जाता है। जो इन्दौर से बहकर नाले के रूप में उज्जैन आती है।

प्रदूषित होने पर यह त्रिवेणी को प्रदूषित करती है।

उज्जयिनी के उक्त वर्णन को पढ़कर हृदय रोमांचित हो उठता है। कालिदास एवं विक्रमादित्य के परस्पर स्नेह की साक्षी है उज्जयिनी।

संदर्भ

1. विक्रमादित्य सभीका निबन्ध पृ. - 15 कालिदास ग्रन्थावली
2. आई.बी.आई.डी. - पी. 16
3. आई.बी.आई.डी.पी. - 89

डॉ. सीमा शर्मा
प्राध्यापक
शा. संस्कृत महाविद्यालय, उज्जैन

भर्तृहरिः अवदान एवं सांस्कृतिक परिवेश

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।8।।

आचार्य भर्तृहरि का ज्ञेय महनीय व्यक्तित्व, प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव से जहाँ विज्ञजनों को भी अज्ञ सिद्ध कर देता है, वहीं उनकी गभीर प्रातिभेय सर्जनायें, उनके कुशल अध्येतओं को उपरोक्त श्लोक गुनगुनाने को विवश कर देती है। भर्तृहरि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आज भी व्यापक एवं गम्भीर शोध का अपेक्षी है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि इस दिशा में महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ उज्जैन प्रतिवर्ष भर्तृहरि समारोह का आयोजन करके देश विदेश के मूर्धन्य मनीषियों एवं चिन्तकों को, भर्तृहरि एवं उनकी रचनाओं पर विचार विमर्श करने का स्वर्णिम अवसर प्रदान करता है।

इस राष्ट्रीय गोष्ठी का प्रमुख विचारणीय बिन्दु है - भर्तृहरि अवदान एवं सांस्कृतिक परिवेश। अर्थात् भर्तृहरि ने हमें क्या दिया है ? यदि कोई मुझझे यह प्रश्न करे, तो मैं उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न ही करूँगा। मैं पूँछूगा कि पहले आप यह बतायें कि भर्तृहरि ने आपको क्या नही दिया ? आज सभ्य मानव व्यष्टि तथा समष्टि के निकट मानवीय आदर्शो, मूल्यों तथा सद्गुणों की पूँजी का उदारतापूर्ण दान, भर्तृहरि ने ही तो किया है। श्रृंगार, नीति तथा वैराग्य शतक के माध्यम से उन्होने इतना दे दिया है कि अब कुछ भी देय शेष नही रहा।

आइये इस रससिद्ध कवीश्वर को तथा उनके कृतित्व पक्ष को यथामति समझने का प्रयास करें ।

श्रृंगार, नीति तथा वैराग्य शतकों के रचयिता श्रीभर्तृहरि संस्कृत साहित्य के एक महान् कवि के गौरव को प्राप्त करते हैं। महाकवि का कवित्वपक्ष जितना ज्ञात तथा प्रकाशमय है, उनका व्यक्तित्व उतना ही अज्ञात तथा अन्धकारमय है। पुनरपि कतिपय पुष्टापुष्ट तथ्यों के आलोक में उनके जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला जा सकता है-

1. अर्वाचीन कोश के अनुसार भर्तृहरि के पिता का नाम श्री वीरसेन था। वे गन्धर्वजाति के थे। उनकी चार संताने थीं 1. भर्तृहरि, 2. विक्रमादित्य, 3. सुभटवीर्य, 4. मेनावती।

2. एक किंवदन्ती के अनुसार भर्तृहरि की माँ का नाम सुशीला था। जो जम्बू द्वीप के राजा की एकमात्र पुत्री थी। राजा ने दौहित्र भर्तृहरि को अपना सम्पूर्ण राज्य सौंप दिया। भर्तृहरि ने उज्जयिनी को राजधानी बनाया। अनन्तर राज्य की बागडोर विक्रमादित्य को सौपंकर सुभटवीर्य को प्रधान सेनापति बनाया।

3. एक जनश्रुति के आधार पर भर्तृहरि विक्रमी संवत् के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे ज्येष्ठ होने के नाते राजसिंहासन के उत्तराधिकारी यही थे, किन्तु पिंगला नाम की रानी जो अप्रतिम सौन्दर्यशालिनी थी, के ऊपर भर्तृहरि का अन्धानुराग था। भर्तृहरि को अपनी पत्नी भक्ति के ही अनुसार रानी पिंगला की पति भक्ति पर अडिग विश्वास था। किन्तु रानी के दुश्चरित्रता की एक घटना ने भोगी भर्तृहरि को योगी भर्तृहरि बना दिया। भर्तृहरि ने अपनी राजसत्ता अनुज विक्रमादित्य को सौंप दी तथा भर्तृहरि गुफा नाम से विख्यात कन्दरा में उत्कट तपस्या की तथा अनेक ग्रन्थों की रचना की।

भर्तृहरि की वैषयिक तृष्णा तथा कामान्धता की चर्चा तत्कालीन चीनी यात्री इत्सिंग ने भी की थी।

जिसने सप्तमशती के अन्त में भारत यात्रा की थी। वह लिखता है - हमारे भारत पहुँचने के 40 वर्ष पूर्व लगभग 651 ईस्वी में भर्तृहरि नामक एक वैयाकरण की मृत्यु हुई थी, जो निश्चित ही वाक्यपदीय का लेखक था। वह कहता है- उसका मन विरक्त तथा गृहस्थ जीवन में सदा दोलायमान रहता था। वह सात बार मठ और संसार के बीच आता जाता रहा'' (सं.सा. का इतिहास-कीथ) किंवदन्तियों के अनुसार रानीपिंगला के दुश्चरित्रता की घटना ने भर्तृहरि को राज्य छोड़कर तपस्वी बनने के लिये प्रेरित किया। इसका आधार भर्तृहरि का निम्न श्लोक है-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत् कृते तु परितुष्यन्ति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च।। (नीतिश.02)

भर्तृहरि का स्थितिकाल -

किंवदन्ती के अनुसार ई.पू. प्रथम शताब्दी भर्तृहरि का काल माना जाता है। विक्रमी संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। विक्रमी संवत् ई.सन् से 57 वर्ष पूर्ण प्रारंभ होता है। पुनः भर्तृहरि प्रणीत श्लोकों के अंश यथारूप कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में विशाखा दत्त के मुद्राराक्षस में मम्मट के काव्य प्रकाश में, भोजराज के सरस्वती कण्ठाभरण आदि में प्राप्त होते हैं।

कालिदास के शाकुन्तल में जो नीति का श्लोक प्राप्त होता है -

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः
नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।। (नीति 071) (शाकु. 5-12)

वह विचारणीय है। भर्तृहरि के उक्त श्लोक की लोक प्रियता तथा भाव प्रवणता ने कालिदास को इसे यथारूप स्वीकारने को प्रेरित किया होगा। अतः यह संगति बन जाती है कि भर्तृहरि विक्रमादित्य के ज्येष्ठभ्राता हैं तथा विक्रम के नवरत्नों में से एक कालिदास। कालिदास ने भर्तृहरि के नीतिश्लोक पढ़े होगें तथा उसे यथारूप अपनी कृति में प्रयुक्त किया होगा। अतः भर्तृहरि का काल ईसा पूर्व प्रथम शती मानना उचित प्रतीत होता है।

भर्तृहरि की कृतियाँ -

युधिष्ठिर मीमांसक ने संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास नामक ग्रन्थ में भर्तृहरि की निम्नलिखित रचनायें स्वीकार की हैं -

1. वाक्य पदीयम् (तीनकाण्ड)
2. वाक्य पदीयटीका (दो काण्ड)
3. सुभाषितत्रयी (शतकत्रय)
4. महाभाष्य दीपिका (महाभाष्यटीका)
5. मीमांसा भाष्य
6. वेदान्तसूत्रवृत्ति तथा
7. शब्द धातु समीक्षा

मैं यहाँ भर्तृहरि के अवदान तथा सांस्कृतिक परिवेश को केन्द्रित कर शतकत्रयों से सम्बन्धित चर्चा

करना चाहूँगा -

भर्तृहरि ने जीवन के सभी पक्षों का गहरा अनुभव प्राप्त किया था। अत एव उनके वर्णन बहुत हृदय ग्राही तथा प्रभावोत्पादक हैं। उनमें भाव और भाषा का मंजुल समन्वय है। श्रृंगार, नीति तथा वैराग्य शतक के मुक्तक पद्यों का लालित्य, भावगाम्भीर्य, अनुभूति, रसमयता, अलंकारों की रमणीयता आदि काव्य सौन्दर्य पद्यों को अत्यधिक मनोज्ञ बना देते है। संस्कृत कवित्व का सुन्दरतम रूप इन शतकों में मिलता है। इनमें आचार शिक्षा, नीति शिक्षा कर्तत्याकर्तव्य वर्णन, परोपकारादि वर्णन, सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा स्त्रियों की स्मणीयता, श्रृंगार रस की सर्वप्रियता, संसार की नरवरता तथा शिवतत्व की परम सत्ता का सुन्दरतम निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। तद्यथा-

साहित्य संगीत कलाहीन पुरुष पशुवत् है -

1. साहित्य संगीतकला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।
   तृणं न खादन्नपि जीवमान स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।
   (नीति 22)

मानवमात्र का परम आभूषण उसकी सुसंस्कृत वाणी है-

2. केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
   न स्नानं व विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
   वाण्येका समलंकशेति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
   क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।19

सत्संगति के लाभ

3. जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्
   मनोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
   चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
   सत्संगतिः कथय किंन करोति पुंसाम्।।23।।

पुष्प एवं मनस्वी की दो ही गतियाँ हैं -

4. कुसुमस्तबकस्येव हे गती स्तो मनस्विनाम्।
   मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा।।33।।

गुणशाली व्यक्ति ही प्रणम्य है-

5. वाञ्छा सज्जन संगमे, परगुणे प्रीति, र्गुरौ नम्रता,
   विद्यायां व्यसनं, स्वयोषिति रति, र्लोकापवादाद्भयम्,।
   भक्तिः शूलिनि, शक्तिरात्मदमने, संसर्गमुक्तिः खले,
   ष्वेते येषु वसन्ति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यों नमः।।62।।

संसार की विशिष्ट उपलब्धियाँ

6. को लाभों ? गुणिसंगमः, किमसुखं ? प्राज्ञेतरैः संगतिः,
   का हानिः ? समयच्युतिर्निपुणता का ? धर्मतत्वे रतिः,
   कः शूरो ? विजितेन्द्रियः, प्रियतमा का ? ऽनुव्रता किं धनं,
   विद्या, किं सुखया मप्रवासगमनं, राज्यं कि माज्ञाफलम्।।100।।

सांसरिक विषयासक्त मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ -

1. द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेम प्रसन्नं मुखं,
घ्रातव्येष्वपि किं ? तदाऽस्यपवनः श्रव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु? तदोष्ठपल्लवरसः, स्पृश्येषु किं तत्तनु-
ध्येयं किं नवयौवनं, सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥74॥

इन्द्रियनिग्रह बड़ा कठिन है-

2. विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना
स्तेऽपि स्त्री मुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरम्॥65॥

वैराग्य शतक-

सांसारिक भोग हमे ही भोग रहे हैं

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥12॥

वैराग्य को छोड़कर सब भयकारक हैं -

भोगे रोगभयं कुलं च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काथे कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥34॥

राजा एवं योगी के साम्य हैं -

महीरम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजन मनुकूलोऽयमनिलः।
स्फुरद्दीप श्चन्द्रो विरति वनितासङ्गमुदितः,
सुखं शान्तं शेते मुनिरतनुभूतिर्नय इव॥77॥

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आचार्य भर्तृहरि की स्थिति एवं काल विषयक अनिश्चितता के बावजूद उनकी आदर्शों मूल्यों तथा सद् गुणों को आत्मसात् करने वाली रचनायें कान्तासम्मितोपदेश के माध्यम से मानवमात्र को देवत्व की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा तथा पाथेय के रूप में प्राप्त होती है।

मानव समष्टि इस महान् रचनाकार की चिरकालपर्यन्त ऋणी रहेगी। इति शभ्

डॉ. तुलसीदास परौहा
एसोसियेट प्रोफेसर
संस्कृत साहित्य एवं दर्शन विभाग
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन

व्याकरण दर्शने भर्तृहरेर्योगदानम्

स एव जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममपेत्यरूपं माता स्वरा वर्ण इति प्रविष्टः॥ (1)

व्याकरणशास्त्रे सन्ति त्रयः पक्षाः प्रक्रिया परिष्कारः दर्शनञ्च। प्रक्रियापरिष्कारौ प्रथितौ किन्तु दर्शनांशस्य चर्चायाम् बुध्दौ भर्तृहरेर्वाक्यपदीयमेव बुद्धौ अवतरति। दर्शनं नाम दृश्यते वस्तुनः परमार्थत्वं येन तद्दर्शनम् इति व्युत्पत्यनुसारेण पाणिनिव्याकरणस्य दर्शनमध्ये भर्तृहरेः महती भूमिका विद्यते। लोके भर्तृहरिः नृपतित्वेन शतकत्रयस्य कर्तृत्वेन वा प्रसिद्धिर्वर्तते, तथापि विदुषाम्मध्ये वैयाकरणत्वेन दार्शनिकत्वेनापि प्रसिद्धिरस्ति। पस्पशाध्किे महाभाष्यकारेण -

चत्वारि वाक्परमिता पदानि तानि ये ब्राह्मणः मनीषिणः ।
गुहायां त्रीणि निहिता नेङ्गयंति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति॥
महोदेवां मर्त्यां आविवेश ... इत्यादीनि (2)

इत्येते विषया एव सन्ति महाभाष्ये किन्तु वाक्यपदीयस्य रचनानन्तरं वास्तविकं व्याकरणदर्शनमाविर्भवति यदासृत्य कौण्डभट्टेन वैयाकरण भूषणसारः नागेशभट्टेन तिस्रो मञ्जूषा रचिताः यत्र मीमांसा न्याय वेदान्तानां शास्त्रार्थस्य विषयाः सन्ति। व्यावहारिकरूपेणाऽपि अस्माभिः शब्दस्यार्थस्य व्यवहारः क्रियते, वस्तुतः शब्दब्रह्मणः एव सत्ता प्रत्यक्षतः सिद्धा महाकविकालिदासोऽपि-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥(3)
अथ च
''न सोऽस्ति प्रत्ययोलोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥''(4)

इति वाक्यपदीयानुसारेण च परब्रह्मणः या सिसृक्षा दृश्यते सा सिसृक्षा कीदृशस्य शब्दस्यानुवेधः ? इति चेद् ''अहमात्मकस्य शब्दस्यानुवेध'' इति समाधान समीचीनम्। सृष्टेरादौ ' एकोऽहं बहुस्याम्' इति सिसृक्षया निष्कले ब्रह्मणि यद् अहमिति आभासः यद्वा अहन्तत्त्व परब्रह्मणोरैक्यादेव श्रीभर्तृहरिणा वाक्यपदीये-

यदेकं प्रक्रियाभेदैर्बहुधा प्रविभज्यते।
तद् व्याकरणमागम्य परब्रहमाधिगम्य ते॥ (5)

यदेकं ब्रह्म प्रक्रियाभेदैः रुचि वैचित्र्यात् प्रतिपादन प्रक्रिया भेदैः नैयायिकानां वेदान्तिनां शैवानां श्रीवैष्णवानां शाक्तानां गाणपत्यानां सौराणां कालापपाणिनीयादि वैयाकरणानां च ये विभिन्नाः प्रतिपादन प्रक्रिया भेदा वर्तन्ते तैः प्रक्रिया भेदैर्बहुधा प्रविभज्यते निरूप्यते। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति, तत् परं ब्रह्म व्याकरणमागम्य क्रमशः मध्यमादिवाग्ज्ञानद्वारा अधिगम्यते प्राप्यते इत्यर्थः।

अयं भावः तपश्चर्याचरणपूर्वकं शास्त्रीय प्रक्रियाज्ञान पूर्वकं च पुण्यजननशक्ति विशिष्टानां साधुशब्दानां प्रयोगेण पुण्यं धर्मो वा अदृष्टं वा समुत्पद्यते। तेन अदृष्टेन अन्तः करणमलं विनश्यति। निष्कल्मषे अन्तःकरणे अन्तः प्रणवरूपमध्यमा वाग्ज्ञानद्वारा -

''अपि प्रयोक्तुरात्मानां शब्दमन्तरमवस्थितम्।
प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते॥ (6)

तैत्तरीयेऽपि श्रूयते- ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म '' इति ब्रह्म तदेव शब्दतत्त्वम्, एतत्सर्वं विश्वं तस्य शब्दब्रह्मणो विवर्तरूपं वर्तते, अतात्त्विकोऽन्यथा भावः परिणामः विकारो वा यथा दुग्धस्य दधिरूपेण परिणामः एतत्सर्वं शब्दार्थोभयरूपं विश्वं तस्य शब्द ब्रह्मणो विवर्तभूतम् क्वचित्तु विवर्तपरिणामशब्दयोः पर्याय वाचित्वं दृश्यते, यथा भवभूतिकृते उत्तर राम चरिते -

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान अम्भो यथा सलिलमेव हितत्समस्तम्।।

एतत् तथ्यं भर्तृहरिणाऽपि स्वीकृतम् तद्यथा-

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नाय विदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथमम् एतद्विश्वं व्यावर्तत।। (7)

वस्तुतः अनया कारिकया इदं ध्वन्यते- 'यथा केचिदेव वेदान्तिनः सर्वं जगत् परब्रह्मणो विर्वतरूपम् यथा अद्वैतिनः श्री शङ्कराचार्य प्रभृतयः केचित्तु परिणामं मन्यन्ते, यथा श्रीरामानुजाचार्यप्रभृतयः, तद्यथा श्रीभाष्ये- (परिणामात् (सा.सू. 1.130)

परिणामस्वाभाव्यात् नात्रोपदिश्यमानस्य परिणामस्य परस्मिन्
ब्रह्मणि दोषावहत्वं स्वभावः, अपि तु निरङ्कुशैश्वर्यावहत्वमेवेत्यभिप्रायः,
एकमेव हि परिणाम उपदिश्यते'' इति (8)

यद्यपि नागेशः परापश्यन्तीमध्यमा वैखरीति चतसृः वाचः स्वीकरोति, तथापि व्याकरण शास्त्रे वाक्त्रयमेव प्रतिपाद्यत्वे स्वीक्रियते। तथा चोक्तं श्रीभर्तृहरिणा वाक्यपदीये-

''वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थ भेदायास्त्रय्याः वाचः परं पदम्।। (9)

प्राण बुद्धि हृदयाख्येन अनेकस्थानेन विभिन्नायाः वैखरर्यादेः वाच इदम् अद्भुतं व्याकरणशास्त्रं परं स्थानं विद्यते। व्याकरणेन वाक्त्रयं बोद्धुं शक्यते इति तात्पर्त्य बोद्धव्यम्।

ऋग्यजुः समाथर्ववेदानां प्रत्येकं मार्गा = शाखाः प्रोक्ताः तद्यथा ऋग्वेदस्य एकशतं शाखाः सामवेदस्य सहस्रं शाखाः अथर्ववेदस्य नवशाखा प्रोक्ताः तेषां वेदानां शाखानां च एकस्मिन् कर्मणि अङ्गता=उपयोगिता वर्तते। यानि कर्माणि एकस्यां शाखायामुक्तानि अन्यस्यां शाखायां च यदि तानि कर्माणि न प्रोक्तानि तर्हि तासां कर्मणां विरोधम् अन्या शाखा न करोति, किन्तु अनुमोदनमेव करोति कुतः इति चेत्, सर्वेषां वेदानाम् एकमेव प्रामाण्यं वर्तते, अत एव वेदाः प्रामाणम्' इति वाक्ये प्रमाणोत्तरमेकवचनं सङ्गच्छते । एकत्वविशिष्टं यत् प्रमितिकरणत्वं तद्वन्तो वेदाः इति तद्वाक्यार्थः तस्य वेदस्य सर्वासु शाखासु शब्दानां शक्तिर्नियता वर्तते, यस्यां शाखायां यस्यशब्दस्य येन रूपेण स्वरेण वा प्रकृतमुच्चारणं प्रोक्तम्, तस्यां शाखायां तस्य तस्य शब्दस्य तथैवोच्चारणे प्रयोगे च अर्थबोधजनकता पुण्यजनकता च न अन्यथा, अतः शाखाभेदस्य मूलं कारणं शब्दानां यत् शक्तित्वम्, तदुक्तम् -

'' प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव समाम्नातः पृथक् पृथक्।।
भेदानां बहुमार्गत्त्वं कर्मण्येकत्र चाङ्गता।
शब्दानां यतश्शक्तित्वं, तस्य शाखासु दृश्यते।।(10)

वस्तुतः स्फोटः एव व्याकरणदर्शनस्य प्रतिपाद्य विषयः तत्रापि व्याकरणं शब्दसाधुत्वज्ञानोपायः 'अयं शब्दः साधु' अयं च असाधुः' इत्येतद् ज्ञानं व्याकरणगमादेव भवति न तु अयं शब्दः साधुः शिष्ट प्रयुक्तत्वाद् यथा गौः 'नरकपालं शुचिः अस्थित्वात् शङ्खवत्'' इत्याकारकैः अनुमानैः ''लोकान्नो लौकिकाः शब्दाः सिद्धाः वेदाच्च वैदिकाः इति बलवदवचनैः शब्दसाधुत्व ज्ञानस्य व्याकरणागमस्य निष्क्रियत्वं नैव जायते। अत एव महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिः एतादृशो विप्रतिपन्नान् जनान् प्रति आह महाभाष्यस्य पस्पशाहिनके-

''समानायामर्थावगतौ शब्दैश्च अपशब्दैश्च शास्त्रेण धर्मो भवतीति भाष्यपंक्तेराशयः।''(11)

वाक्यपदीयस्य ब्रह्मकाण्डे तु अयं विषयः बहवीभिः कारिकाभिः पुष्कलतया प्रतिपादितः तथाहि-

तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं च सनिबन्धानाम्।
आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम्।। (12)

इति।

सन्दर्भाः

1. श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
2. महाभाष्यम् पस्पशाह्निकम्
3. रघुवंशमहाकाव्यम् 'प्रथमसर्गः'
4. वाक्यपदीयम् 'ब्रह्मकाण्डः'
5. वाक्यपदीयम् 'ब्रह्मकाण्डः' (1-22)
6. वाक्यपदीयम् 'ब्रह्मकाण्डः' (1-131)
7. वाक्यपदीयम् 'ब्रह्मकाण्डः'
8. श्री भाष्यम्
9. वाक्यपदीयम्
10. वाक्यपदीयम्
11. महाभाष्यम् 'पस्पशाछिम्
12. तस्माद .... वाक्यपदीयम् - ब्रह्मकाण्ड - 13

डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी
सहायकाचार्यः
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक
विश्वविद्यालय, उज्जैन

संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य का साहित्यप्रेम

शास्त्रों में न्याय पढ़ा गया है। एक सम्बन्धिज्ञानम् अपरसम्बन्धिज्ञानस्य परिचायको भवति। इसके अनुसार विक्रमादित्य का नामोच्चारण करते ही संवत्, उज्जयिनी कालिदासादिन व रत्न का स्मरण होता है। सर्वप्रथम संवत् का लोकव्यवहार में प्रयोग होने के कारण वीर विक्रमार्क को संवत्प्रवर्तक के रूप में स्मरण करते हैं।

युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ ततो नृपः स्याद्विजया भिनन्दनः।
ततस्तु नागार्जुन भूपतिः कलौ, कल्की च षष्ठः शक कारण स्मृतः॥

1. युधिष्ठिर संवत्, 2. विक्रमसंवत्, 3. शालिवाहनशकम्, 4. विजयाभिनंदन संवत्, 5. नागार्जुन संवत्, 6. कल्कि संवत्

इस प्रकार यज्ञादिकार्यों में भी विक्रम संवत् का ग्रहण है।

निश्चय ही विक्रमादित्य की ऐतिहासिक विवेचना करना महान चुनौती है वैसे ही संवत् के विषय में भी चर्चा करना विवाद पूर्ण है। किन्तु यह भी सत्य है। कि विक्रमादित्य अभिधान या उपाधि से विभूषित महान् व्यक्ति ने ही संवत् का प्रवर्तन किया था।

विक्रम संवत के प्रवर्तन के विषय में कुछ विद्वानों के मत -

1. राखलदास बनर्जी ने नहपान को विक्रम संवत् का प्रवर्तन स्वीकार किया है।
2. फ्लीट ने कनिष्क को वि.सं. प्रवर्तक माना है।
3. सर जॉन मार्शल और रेप्स अजेस को प्रवर्तक माना है।
4. सी.बी. वैद्य डॉ. अल्तेकर, स्टीन, कॉनो, व्यूलर पिटर्सन तथा यूरोपीय विद्वानों के अनुसार शकारि विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर यह संवत् चलाया यह गन्धर्वसेन का पुत्र था।
5. डॉ. वेणीप्रसाद शुक्ल के मतानुसार अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र शुंग ने इस संवत को चलाया।

इस प्रकार आधुनिक विद्वान् ईसा से 57 वर्ष पूर्व विक्रम संवत् चलाने वाले विक्रमादित्य को गन्धर्वसेन (गर्दभिल्ल) के पुत्र के रूप में स्वीकार किया है। अस्तु। विक्रमादित्य का सम्बन्ध जिस प्रकार संवत् से है उसी प्रकार विद्वत्परम्परा के संरक्षण के रूप में है। उनके नव रत्नों की चर्चा 'ज्योतिर्विदाभरणम्' नामक ज्योतिष के ग्रन्थ में है-

''धन्वन्तरिक्षपणकामर सिंह शङ्कु वेताल भट्ट घटखर्पर कालिदासाः।
ख्यातोवराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥''

1. धन्वन्तरि, 2. क्षपणक, 3. अमर सिंह, 4. शङ्कु, 5. घटखर्पर
6. कालिदास, 7. वराह मिहिर, 8. वेताल भट्ट, 9. वररुचि

ये नौ विद्वानों का स्मरण किया जाता है।

इस श्लोक में ज्येष्ठ लघु आदि विचार नहीं है, धन्द को ध्यान में रखते हुए धन्वन्तरि को पूर्व में रखा गया है। यद्यपि इन विद्वानों के कालक्रम में मत भेद है अमरसिंह कालिदास वराहमिहिर का कालखण्ड अलग अलग है, तथापि उपर्युक्त विद्वानों की उपाधिधारण के रूप में एक कालखण्ड की कल्पना की जा सकती है।

महाकविकालिदास का सम्बन्ध विक्रमादित्य से उसका प्रमाण महनीयग्रन्थ अभिज्ञानशाकुन्तल में है -

'आर्ये। इयं हि रस भाव विशेषदीक्षागुरोः
विक्रमादित्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्-
विक्रमोर्वशीय नाटक में अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः

इसी क्रम में मेघदूत में उज्जयिनी का प्रेम भी वर्णित है -

प्राप्य वन्तीनुदयनकथा कोविदग्राम वृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पी भूते सुचरित फले स्वर्गिणां गां गतानां,
शेषै पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्ड मेकम्।।

इस प्रकार उज्जयिनी को विक्रमादित्य एवं कालिदास के नाम से स्मरण किया जाता ही है। ज्ञान की नगरी के रूप में शास्त्रों में वर्णित है अतः महाकुम्भ सम्भवतः इसी से सम्बन्धित हो।

डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी
सहायकाचार्यः
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक
विश्वविद्यालय, उज्जैन

भर्तृहरि नाथ और उनकी परम्परा की वेशभूषा

भर्तृहरि नाथ और उनकी परंपरा के नाथ योगियों को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। मेखला, श्रृंगी, सेली, गूदरी, खप्पर, कर्ण कुण्डल, बघंबर, झोली आदि चिन्ह ये लोग धारण करते हैं। परंपरा से ज्ञात होता है कि कान फाड़कर कुण्डल धारण करने के कारण ये लोग कनफटा नाथ कहे जाते हैं। कान फड़वाने की प्रथा किस प्रकार शुरू हुई इस विषय में अनेक प्रकार की दंत कथाएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि स्वयं मत्स्येंद्र नाथ ने इस प्रथा का प्रवर्तन किया। उन्होने शिव के कानों में कुण्डल देखा और उसे प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या की थी। विभिन्न मत मतान्तरों के साथ विद्वानों का यह भी मानना है कि गोरखनाथ ने भर्तृहरि का कान फाड़कर इस प्रथा को चलाया था।

भर्तृहरि के कान में गुरू ने मिट्टी का कुण्डल पहनाया था। आज भी बहुत से नाथ योगी मिट्टी का कुण्डल धारण करते हैं। परन्तु इसके टूटने की सदा आशंका बनी रहती है।इसलिए धातु या हिरण के सींग का कुण्डल धारण किया जाता है। मान्यता यह है कि विधवा स्त्रियाँ जो नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होती हैं वे भी कुण्डल धारण करती हैं और गृहस्थ योगियों की पत्नियाँ भी इन्हे धारण करती पाई जाती हैं। भर्तृहरि परंपरा के लोग विशेषकर बसंत पंचमी के दिन कान को चिरवाकर मंत्र के संस्कार के साथ कुण्डल को धारण करते हैं। इस परंपरा के योगियों का मानना है कि स्त्रियों के दर्शन से घाव पक जाता है इसलिए जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक स्त्री दर्शन से बचने के लिए वे किसी कमरे में बंद रहते हैं और फलाहार करते हैं। यह भी मानना है कि जिस योगी का कान खराब हो जाता है वह सम्प्रदाय से अलग हो जाता है और पुजारी का अधिकार खो देता है।

पद्मावत के मलिक मोहम्मद जायसी ने भर्तृहरि नाथ और उनकी परंपरा के नाथ योगियों की वेशभूषा का सुंदर वर्णन किया है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि नाथ योगियों का जो वेश आज है व दीर्घकाल से चला आ रहा है। भर्तृहरि नाथ की परंपरा के वेश धारण करने वाले योगियों के हाथ में किंगरी, सिर पर जटा, शरीर पर भस्म, मेखला, श्रृंगी, योग को शुद्ध करने वाली धंधारी चक्र, रुद्राक्ष और आधार जो कि आसन होता है धारण किया जाता है। इस वेशभूषा के योगी गोरख-गोरख की रट लगाते हुए निकल पड़ते हैं और उनके कान में कुण्डल कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल, कंधे पर बघंबर जो कि आसन के लिए होता है, पैरो में पांवरी और बगल में खप्पर धारण किए रहते हैं।

संत कबीर दास के अनेक पदों से पता चलता है कि भर्तृहरि नाथ की परंपरा के योगी मुद्रा यानि कि कुण्डल, नाद, कंथा, आसन, खप्पर, झोली, विभूति, बटुबा आदि धारण करते थे।

इस परंपरा के योगी यंत्र अर्थात् सारंगी यंत्र का उपयोग करते थे। गोपी चन्द्र का चलाया हुआ होने के कारण सारंगी को गोपी यंत्र भी कहते हैं, ये योगी मेखला और भस्म धारण करते थे और अजपा जाप करते थे। इसी प्रकार सूरदास के भ्रमर गीत में गोपियों ने जिन योगियों की चर्चा की है। उनका भी यही वेश वर्णित है जो इस प्रकार है।

किंगरी- इन चिन्हों में किंगरी एक प्रकार की चिकरी है जिसे पौरिये या भर्तृहरि के गीत गाने वाले योगी लिए फिरते हैं, मेखला मूंज की रस्सी का कटिबंध है और सींगी हरिण के सिंग का बना हुआ बाजा है जो मुँह से बजाया जाता है औघड़ और योगी दोनो ही एक प्रकार का 'जनेव ' धारण करते हैं जो काले भेड़े की ऊन से

बनाया जाता है। हर कोई उसे नही बना सकता। सम्प्रदाय के कुछ लोग ही, जो इस विधा के जानकार होते हैं। उसे बनाते हैं। मेखला सब योगी धारण करते हैं। कुछ योगी काले भेड़े के ऊन की बनी मेखला कंमर में बाँधते हैं। लंगोटी पहनने में इस मेखला का उपयोग होता है। एक और प्रकार की मेखला होती है जिसे धारण करने के बाद योगी को भिक्षा के लिये निकलना ही पड़ता है। इसे हाल मटंगा कहैंते है।

धंधारी - धंधारी एक तरह का चक्र है जिसे भर्तृहरि परंपरा के योगी लोहे या लकड़ी की डण्डियों से एक चक्र बनाकर उसके बीच में छेद करते हैं। इस छेद में कौड़ी या मनका धागे की सहायता से डालकर फिर मंत्र पढ़कर उसे निकालते हैं। बिना मंत्र क्रिया जाने उस चक्र में से कौड़ी या मनका निकालना कठिन होता है। इस पंथ के योगियों का मानना है कि मंत्रों को पढ़कर इस प्रकार धांधरी करने से ईश्वर प्रसन्न होते हैं और वे संसार चक्र में उलझे प्राणियों को भवजाल से मुक्त कर देते हैं।

रुद्राक्ष - भर्तृहरि नाथ योगी 32, 64, 84 या 108 मनके की माला गले में धारण करते हैं। इन मालाओं का तंत्र शास्त्र में विशेष महत्व रहता है।

अधारी - यह कारू के डंडे में लगा हुआ काठ का पीढ़ा (आसन) है जिसे योगी लोग प्राय: लिये फिरते है और जहाँ कहीं रखकर उस पर बैठ जाते हैं। बिना अभ्यास के इस पर बैठ सकना असंभव है।

कंथा - कंथा गेरुए रंग की सुजनी का चोलना है।जो गले में डाल लेने से अंग को ढांक लेता है। इसी को गूदरी कहते है। यह फटे पुराने चिथड़ों को काट कर सिली जाती है। गेरुइा या लाल रंग ब्रह्मचर्य का प्रतीक माना जाता है।

सोटा - सोटा झाड़ फूंक करने का एक डेढ़ दो फीट का डंडा होता है जो काले रंग का होता है। योगी इसे भैरवनाथ या गोरखनाथ का सोठा मानते हैं। ये योगी शरीर में भस्म लगाये ललाट बाहुमूल और हृदय प्रवेश पर त्रिपुण्ड लगाये गूदरी धारण किये लंगोटी युक्त मिलते हैं।

खप्पर : हाथ में खप्पर धारण करना नाथ मत के लोग महत्वपूर्ण समझते हैं। यह मिट्टी, नारियल या धातु से बना होता है।

भर्तृहरि नाथ और उनकी सम्प्रदाय परम्परा में इन विभिन्न प्रकार के प्रतीकों, चिन्हो और इसमें प्रवेश की विशेष विधियाँ और कारण मिलते हैं। सिर में विभूति डालकर भस्म स्नान करना, जल स्नान करना और नाद जनेऊ को पहनाने की प्रक्रिया इसमें विशेष है। जिस प्रकार नाद अर्थात् काष्ठ से बनी जनेऊ को धारण करना विशेष है।

संदर्भ सूची :-

1. सु. चर्या. पृ. 241
2. ब्रिग्स, गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज, पृ. 8-9
3. योग सम्प्रदाय
4. पद्मावत जोगी खण्ड, 12,128
5. द्विवेदी हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, पृ. 18

डॉ. किरण रमण
शोधार्थिनी

पुरुषार्थ काम और शृंगार शतक

भट्टतौत ने कहा है कि काव्य के दो मूल तत्त्व है दर्शन और वर्णन। शृंगार शतक में भर्तृहरि का जीवन दर्शन और आलम्बन एवं उद्दीपन रूपी विभावों का वर्णन ही संप्रेषणीय है। शृंगार शतक रूपी रत्नाकर से मैने उन्ही रत्नों को निकालने का प्रयत्न किया है जो मेरे विवेच्य विषय को अलोकित कर सकें। वैसें भी रत्न तो अपनी ही आभा से भास्वर रहता है और अपना प्रकाश विकीर्ण करता है।

हम सभी जानते हैं कि भारतीय संस्कृति का निर्माण सैकड़ों वर्षों की अवधि में हुआ है जिसमें लोककल्याणकारी तत्त्व उत्तरोत्तर क्रमशः विकसित होते रहें हैं। सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम् वाङ्मय है वेद जो भारतीय संस्कृति का मूल निस्यन्द है। वैदिक मंत्रों में ''जीवेम शरदः शतम्'' की कामना व्यक्त हुई है। ऋषियों ने सौ वर्ष तक निर्विघ्न जीवित रहने का स्वप्न देखा था। उन्होने वार्षिक आयु के प्रबंधन की बहुआयामी दृष्टि भी दी थी। अतः यह कहना समीचीन होगा कि भारतीय संस्कृति का मूल है उसका जीवन दर्शन। इस जीवन दर्शन के अनेक स्तम्भ हैं - उनमें से एक है पुरुषार्थ। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के समन्वित रूप को ही पुरुषार्थ चतुष्टय कहते है। ये पुरुषार्थ मानव के समग्र जीवन के उद्देश्य से संबधित है। इनके द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति करता है। व्यक्ति की समस्त अभिलाषाएँ इन्हीं चारों में अन्तर्निहित रहती है। मानव शरीर में आवश्यकताओं को चाहने वाले मुख्य चार अंग है। पुरूषार्थ चतुष्टय उन्ही अंगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।जैसे - शरीर के पोषण एवं संवर्धन के लिये अर्थ, मनस्तुष्टि के लिये काम बुद्धि के लिये धर्म और आत्मा की शान्ति लिये मोक्ष ये आवश्यकताएँ अनिवार्य एवं अपरिहार्य भी हैं। क्योंकि बिना भोजन वस्त्र के शरीर कृश और निष्क्रिय बन जाता है। बिना काम के मन कुण्ठित एवं निकम्मा बन जाता है। बिना धर्म के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। और बिना मोक्ष के आत्मा का पतन हो जाता है। जहाँ मोक्ष निवृत्ति परक पुरुषार्थ है, वहीं धर्म अर्थ एवं काम प्रवृत्तिपरक। अतः दार्शनिकों ने इन प्रवृत्ति परक पुरुषार्थों या लक्ष्यों को ही त्रयी का नाम दिया है।

सनातन काल से यह बात लोक में प्रसिद्ध है और शास्त्रों में अभिहित है कि मनुष्य को सुख प्राप्ति के लिये इन तीनों पुरुषार्थों का प्रयत्न करना चाहिये। वात्स्यायन इसी तथ्य के सार को पूर्वजकथन के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि

- धर्म अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील मनुष्य इस लोक एवं परलोक में सुख प्राप्त करता है।

एवमर्थं च कामं च धर्मं चोपाचरन्नरः।
इहामुत्र च निःशल्यमत्यन्तं सुखमश्नुते।।[1]

साथ में यह भी निर्देश देते हैं कि मनुष्य इन्हे इस प्रकार प्राप्त करें कि एक पुरुषार्थ दूसरे का बाधक न बने।[2] कौटिल्य का भी यही मानना है कि जीवन की सफलता का सूत्र त्रिवर्ग की परस्पर अविरोधिता में है -

''धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत।
एको हि अत्यासेवितो धर्मार्थकामानामितरौ पीडयति''[3]

इन पुरुषार्थों में से मनुष्य किसे अधिक महत्त्व प्रदान करे ऐसी शंका उत्पन्न होने पर इसका समुचित समाधान भी आचार्यों के एकमतने प्रस्तुत किया है कि - ''इन पुरुषार्थों का प्रयोग इस प्रकार किया जाये कि ये तीनों परस्पर एक दूसरे को बाधित न करें। ''महाकवि कालिदास की भी यही अवधारणा है कि तीनों पुरुषार्थों का

परस्पर सामंजस्य होना चाहिए।

न धर्ममर्थ कामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ

नार्थ कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ।।[4]

इस प्रकार ऐहलौकिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये त्रिवर्ग के सन्तुलन की शास्त्रकारों के साथ-साथ कवियों ने भी स्वीकृति दी है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि न केवल धर्म से जीवन सुखमय हो सकता है, न अर्थ से और न ही केवल काम से, अपितु तीनों के परस्पर संतुलित सामंजस्य से ही जीवन सफल होता है। धर्म अर्थ एवं काम की परस्पर जुड़ी हुई कड़ियाँ ही सुख-समृद्धिका साधन है। इन शास्त्र निर्दिष्ट सिद्धान्तों को महाकवियों ने कान्ता सम्मित शैली में काव्यों में गुम्फित किया है। उसी का फल है श्रृंगार शतक।

भर्तृहरिकृत श्रृंगार शतक मुक्तक कोटि की रचना है। अग्नि पुराण में कहा गया है कि -

''मुक्तकं श्लोक एकैश्चमत्कारक्षमः सताम्''[5]

अर्थात् जिसमें एक-एक पद्य एवं भाव की दृष्टि से स्वतंत्र अपने आप में पूर्ण तथा चमत्कार की सृष्टि में समर्थ है उसे मुक्तक कहते है।

साहित्य दर्पण कार का मानना है कि पूर्वापर संबंध से मुक्त होने के कारण ही इसकी संज्ञा मुक्तक है।

''तेन मुक्तेन मुक्तकम्''[6]

ध्वन्यालोककार कहते हैं कि मुक्तक में भी प्रबंध काव्यों की भांति रसपेशलता एवं भावतरलता हो सकती है।

''मुक्तकेषु प्रबंधेष्विव रसबंधाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते''

साहित्य प्रेमी काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द का सहोदर मानते हैं। इस आनन्द अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ हैं साधनावस्था और सिद्धावस्था। साधनावस्या को प्रत्यक्षपक्ष और सिद्धावस्था को उपभोग पक्ष कहा जा सकता है इस दृष्टि से देखें तो भर्तृहरि आनन्द की साधनावस्था के कवि हैं। श्रृंगार शतक में भर्तृहरि ने नारी सौन्दर्य के साथ साथ स्त्री पुरुष संबंधों के विविध पक्षों एवं विलासों का खुला वर्णन किया है। सच तो यह है कि भर्तृहरि की व्यापक एवं सूक्ष्म दृष्टि से कोई तत्त्व बच नही पाया है। सत्य की मार्गणा, सिद्धि एवं उपलब्धि शतक की आधार शिला है। उन्होने इस रहस्य को बहुत अच्छे से समझा था कि चारों पुरुषार्थों के मूल में विद्यमान तत्त्व काम ही है।

ध्वन्यालोककार ने ''अपारे काव्य संसारे कविरेक प्रजापतिः''[8] का उद्घोष कर कवि को अपनी सृष्टि का प्रजापति माना है। इस दृष्टि से देखें तो हर काव्य स्रष्टा अपनी रचना का एक लक्ष्य रखता है। भर्तृहरि ने भी उस पुरुषार्थ का लक्ष्यरखा जो सर्वजनभोग्य है, वह है काम। यही काम सृष्टिचक्र का मूल भी है।

'काम' शब्द इच्छार्थक कम् धातु में घञ् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है इच्छा करना। काम शब्द वैदिक युग से लेकर आज तक इसी अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में काम की चर्चा कुछ इस प्रकार की गई है कि ''जब कुछ भी नहीं था, न सत् था न असत् न व्योम न अन्तरिक्ष, न दिन न रात। अन्धकार अन्धकार में निलीन था, उस अवस्था में अपनी स्वधा से बिना वात के एक साँस ले रहा था और जब तपोमहिमा से वह उद्भूत हुआ तब उसे काम ने सबसे पहले अभिभूत किया। यही काम ''मनरसोरेतः'' अर्थात मन का पहला बीज था।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयौमनीषा।।[9]

इसी बात की पुष्टि अथर्ववेद में भी की गई है। जहाँ कहा गया है कि ''कामस्तदग्रे समवर्तत''[10] अर्थात् काम ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ है। इस तरह हमने देखा कि वैदिक अवधारणा के अनुसार सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पत्ति काम की ही है। वस्तुतः काम मन का रेतस् है। शिशु के कोमल हृदय में सर्वप्रथम वही स्पन्दित होता है।

पुराणों ने भी इसे ''आदिदेव'' कह कर सम्पूजित किया है। देखा जाये तो काम एक महती शक्ति है। इसके अनेक भाव-विभाव एवं अंग-उपांग है। चित्त रूपी यंत्र को चलाने वाली अदम्य शक्ति है। वैदिक ऋषियों ने जिस काम पुरुषार्थ को बीज रूप में उपन्यस्त किया है, परवर्ती आचार्यों ने उसको बड़ी ही गंभीरता एवं सूक्ष्मता के साथ विस्तारित किया है। इसका श्रेष्ठतम् उदाहरण है वात्स्यायन का काम सूत्र। वस्तुतः वात्स्यायन धर्म और अर्थ के विस्तृत पटल में अन्तर्निविष्ट एवं प्रच्छन्न रूप से निहित काम के रहस्य को जानते थे। उन्होने यह बताने की चेष्टा की है कि कामजन्य रतिसुख ही आनन्द का सर्वोत्तम साधन है। इस आनन्द का उद्देश्य है - पति पत्नी में आध्यात्मिकता, परोपकार और उदात्त भावनाओं का विकास। मन के लगाव से ही विवाह और प्रेम सफल होते हैं।

आचार्य वात्स्यायन काम की बड़ी ही व्यवहारिक एवं दार्शनिक परिभाषा देते हुए कहते हैं कि - आत्मा से संयुक्त एवं मन से अधिष्ठित श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने अपने विषयों से सम्पृक्त होने पर अधिष्ठाता मन को जो सुखद अनुभूति होती है उसी का नाम काम है।

''श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयोगेन मनसा
अधिष्ठातानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।[11]

काम विषयिणी यह अवधारणा बड़ी ही व्यापक है। जिसके अनुसार ज्ञानेन्द्रियों का अपने-अपने विषय से सम्पृक्त होने पर मन के द्वारा आत्मा को जो सुखद अनुभूति होती है उसी का नाम काम है। इसी को आनन्द कहा गया है। अर्थात् अपने विषय में अनुकूल प्रवृत्ति ही काम है। प्रवृत्ति प्रधान होने के कारण अज्ञान, माया, अविद्या एवं आकर्षण का मूल होते हुए यह सृष्टि का बीज है। परन्तु निवृत्ति प्रधान होने पर यह ज्ञान विद्या, विवेक का हेतु भी है। अर्थात् काम के प्रतिआसक्ति भोग है तो विरक्ति मोक्ष।

मनुस्मृतिकार ''सर्वान कामान् समश्नुते'' कह कर जीवन के उन सभी कमनीय पक्षों की ओर संकेत कर रहे हैं जिन्हे मनुष्य अपनी वासना की तृप्ति के लिये उपयोगी समझता है।

शैवदर्शन में समस्त सृष्टि का मूल शिव और शक्ति का संयोग माना गया है जो काम का ही फल है।

''शिवशक्ति समायोगाद् जायते सृष्टि कल्पना।[12]

अर्थात् शिव और शक्ति के संयोग से जगत् की सृष्टि हुई है। इस कथन का आध्यात्मिक पक्ष यही है कि वासना, पुरुष और प्रकृति के संबंध से प्रकाशित है और वही भौतिक पक्ष में स्त्री पुरुष के संभोग में परिणत होती है पुरुष शिवरूप और स्त्री शक्ति रूपा है। इन्ही दोनों का मिथुनात्मक संबंध ही वासना है, आकर्षण है, इसी को काम कहते हैं। इसी प्रकार शाक्त धर्म में भी मैथुनजन्य सृष्टि की कल्पना की गई है।

महाकवि कालिदास ने जिसे ''सर्वभोग्य''[13] कहा है वह गृहस्थाश्रम धर्म-अर्थ-काम तीनों के समन्वय से ही चलायमान है। परन्तु गार्हस्थ्य वृत्ति का मूलाधार है काम, अर्थात् पति पत्नी का साहचर्य। दाम्पत्यप्रणय प्रेम का सर्वश्रेष्ठ रूप माना गया है क्योंकि सुःख- दुःख दोनों ही स्थितियों में यह अद्वैत बना रहता है। इस संबंध में भवभूति का मानना है कि वृद्धावस्था में भी इसकी रसवत्ता कम नहीं होती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी काम की प्रशस्ति का मान किया है प्रत्रयड के अनुसार मानव जीवन का आधार काम है। जिजीविषा को फ्रायड ने काम से सम्पृक्त माना है।

इस तरह हम देखते है कि संस्कृत वाङ्मय में जिस काम की पुरुषार्थ के रूप में स्थापना की गई है वह लोक

में सर्वजनभोग्य होता हुआ अधिक विस्तार को प्राप्त होता है किन्तु अत्यन्त संकोच के साथ बोला जाता है और काव्य में छद्म रूप से कहा जाता है। परन्तु भर्तृहरि ने श्रृंगार शतक में रति एवं उसके आकर्षण को विभिन्न वर्णनों के द्वारा व्यक्त किया है जो पुरुषार्थ काम का साधन रुप है। इसे काव्य शास्त्रीय आचार्यों के निर्देश ही कह सकते हैं जिसमें उन्होने कहा है कि कवि की समग्र रचना में पुरुषार्थ चतुष्टय अथवा इनमें से किसी एक की सिद्धि अवश्य होना चाहिये। संभवतः इसी आदेशना का पालन करते हुए भर्तृहरि ने मानव मात्र को काम की प्रेरणा देते हुए उसे आनन्द के साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यह प्रतिष्ठा दो कारणों की संभावना पर आधृत हो सकती है। एक तो भर्तृहरि ने अपने युग में लोगों को काम से विरक्त होते देखा होगा अथवा काम के प्रति अल्प रुझान देखकर उन्हे प्रेरित करना अभीष्ट होगा।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में जिन काव्यरसों की चर्चा की है उनमें प्रथमगणनीय है श्रृंगार रस। जिसका स्थायी भाव है रति। सहृदय सामाजिकों को रस चर्वणा विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारियों के संयोग से ही होती है। श्रृंगार शतक के पद्यों में परस्पर अनुराग के फलस्परूप भी अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव अत्यल्प ही है। विस्तृत वर्णन है तो आलम्बन एवं उद्दीपन रूपी विभावों को। अतः यह कहना उपयुक्त ही होगा कि इस रचना का मूल तत्त्व रस सृष्टि नही अपितु रति प्रेरण है। जो श्रृंगार प्रधान होने के कारण पुरुषार्थ काम का अंग रूप है।

नाट्यशास्त्र प्रणेता का मानना है कि श्रृंगार तभी कहलाता है जब वह सुख बहुल हो, प्रिय जनों से युक्त हो, ऋतु-माल्यादि उद् दीपक पदार्थो के द्वारा मनोरंजन किया जाता हो तथा जिसमें नायक नायिका का मिलन हो[15]

भर्तृहरि ने श्रृंगार के इन सभी पक्षों का स्पर्श किया है। श्रृंगार के लिये मुख्य है नायक और नायिका जो विभाव का आलम्बन पक्ष है। आलंबन रूपा नारी के शारीरिक सौन्दर्य को कवि ने नख से शिख तक उकेरा है। नारी की उपस्थिति प्रत्यक्ष हो या परोक्ष सभी स्थितियों में उसका सौन्दर्य पुरुष को आकर्षित करने का हेतु है। एक स्थान पर भर्तृहरि कहते हैं कि नव यौवना की मुख मुस्कान रमणीय है, चितवन रमणीय है, उसकी गति भी रमणीय है। उसमें क्या रमणीय नहीं है। ''किमिव न हि रम्यं मृगदृशः''।[16] अर्थात् उस युवती में सब कुछ तो रमणीय है।

इसी प्रकार पुरुष के प्रति स्त्री के आकर्षण का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि पुरुष के प्रति किसी का आकर्षण और प्रेम की सीमा इतनी ऊँची है कि विधाता भी परिवर्तन करने में असमर्थ है -

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः।।[17]

स्त्री-पुरुष में कामोद्भव की पराकाष्ठा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि युवक युवतियों में यदि परस्पर अनुराग जाग गया तो कुलीनता, विद्वत्ता, बड़प्पन और भले बुरे की पहचान तक कुछ भी नहीं दिखाई देता। अर्थात् काम के आगे ये सभी सिद्धान्त व्यर्थ से हो जाते हैं।

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्त्वं विवेकता।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पञ्चेषु पावकः।।[18]

उद्दीपन विभाव के रूप में कवि को प्रकृति के प्रायः सभी रमणीय उपादान ग्राह्य हैं। मानवेतर बाध्य प्रकृति को चित्रित कर कवि ने ऋतु वर्णनों की जो सृष्टि की है वह अनुपम है। ऋतुओं में भी श्रृंगारिकों की प्रिय ऋतु है वसन्त। वसन्त का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि -

मधुरयं मधुरैपि कोकिलाकलरवैर्मलयस्य च वायुभिः।
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो विपदि हन्त सुधाऽपि विषायते।।[19]

द्वैत से अद्वैत की और अग्रसर होते हुए कवि कहते हैं कि

अदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैक लोलाः।

आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्यामाशास्महे विग्रहयोरभेदम्।।[20]

अर्थात् नारी सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होते हुए उससे मिलन की आकांक्षा अभेद रूपी एकात्म भावना है। आत्मा परमात्मा के मिलन रूपी यह भर्तृहरि सम्मत दर्शन है।

यहाँ भर्तृहरि श्रृंगार की पराकाष्ठा से होते हुए अध्यात्म की सीढ़ी पर आरूढ़ होते हैं। सम्पूर्ण रचना में इस प्रकार के अनेकशः उदाहरण देखे जा सकते हैं।

वस्तुतः देखा जाये तो जीवन के अभ्युदय का आधार एक निश्चित व्यवस्था है - जो धर्म और अर्थ की नीतियों से आती हैं। आसक्ति रहित जीवन ही मोक्ष है। जिसका मूल कारण है वैराग्य। जीवन की नीतियों में जहाँ शिवत्त्व निहित है वहीं वैराग्य में सत्यत्व। जबकि श्रृंगार का सौन्दर्य बोध इन दोनों के बीच की कमनीय एवं कोमल कड़ी है और यही काम का साधन है।

श्रृंगारशतक के वर्ण्य विषय से स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि ने कामसुख के साथ-साथ श्रेय-प्रेय, स्वस्ति एवं शान्ति का बड़ी ही गहराई में जाकर उपबृंहण किया है, जो जीवन और जगत् के विभिन्न पक्षों के प्रति उनकी दृष्टि का संकेतक भी है। शतक में प्रतिबिंबित जीवन दर्शन के दो आयाम प्रतिबिम्बित होते हैं। एक तो है सौन्दर्य बोध जो नारी के साथ-साथ प्रकृति के अन्यान्य उपादानों के वर्णनों में देख सकते हैं, और दूसरा है परमार्थबोध जो भोग से मोक्ष की ओर ले जाता है।

अस्तु, सम्पूर्ण लेख के सार को निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है कि-

* पुरुषार्थ चतुष्टय समग्र जीवन के लक्ष्य हैं जो भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।
* धर्म अर्थ और काम प्रवृत्ति मूलक लक्ष्य हैं। इनका परस्पर सामंजस्य ही सुख एवं आनन्द को देने वाला है।
* इन्द्रियों की अपने अपने विषय में अनुकूल प्रवृत्ति ही काम है।
* वैदिक मान्यता के अनुसार सृष्टि में सर्वप्रथम काम का ही जन्म हुआ।
* काम ही सृष्टि का मूलाधार है। यह सर्वमान्य अवधारणा है।
* श्रृंगारशतक मुक्तक कोटि की रचना है।
* भर्तृहरि ने काम पुरुषार्थ को केन्द्र में रखते हुए श्रृंगार शतक की रचना की है।
* इसमें मुख्य रूप से आलम्बन एवं उद्दीपन विभवों का ही वर्णन है जो सौन्दर्य बोध का परिचायक है।
* संभवतः भर्तृहरि का संदेश है भोग से मोक्ष की ओर जाना।

सन्दर्भ -

1. कामसूत्र - 01/02/39
2. कामसूत्र - 01/02/40
3. कौटिलीय अर्थशास्त्र-
4. रघुवंशम् - 17/57
5. अग्निपुराण - अ. 36
6. साहित्यदर्पण - 06/314
7. ध्वन्यालोक - तृतीय उद्योत
8. ध्वन्यालोक - पृ. 422
9. ऋग्वेद - 10/129/04

10. अथर्ववेद - 19/52/01
11. कामसूत्रम् - 01/02/11
12. शिवपुराण - भूता वा वर्तमान वा अनित्या वापि सर्वशः।
कामात् सर्वे प्रवर्त्तन्ते लीयन्ते बुद्धिमागताः।।
13. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 02/14
अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये।
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।।
14. उत्तरराम चरितम् - 01-39
अद्वैतं सुःखदुःखयोरनुगतं स्वास्स्वस्थासु य।
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
15. नाट्यशास्त्र - 06-47
सुखप्रायेष्ट सम्पन्न ऋतुमाल्यादिसेवकः।
पुरुषः प्रमदायुक्तः शृंगार इतिसंज्ञितः।।
16. शृंगारशतकम् - 06
स्मितं किञ्चद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्ति सरसः।
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः,
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव न हि रम्यं मृगदृशः।।
17. शृंगारशतकम् - 75
18 . शृंगारशतकम् - 76
19 . शृंगारशतकम् - 82
20. शृंगारशतकम् - 22

डॉ. श्रीमती माला प्यासी
सहा.प्राध्या. संस्कृत शा.महाकोशल
कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

ब्राह्मणपुरी का परमार भोजकालीन शिवमंदिर

परमार राजा भोजदेव का समकालीन एक खंडित सुन्दर शिव मंदिर ब्राह्मणपुरी में विद्यमान है। इसमें संवत् 1100 का एक शिलालेख है इस मंदिर की सूचना और उसके फोटो धार (म.प्र.) के पुरारुचि सम्पन्न शिक्षक श्री मुकेश राजपुरोहित ने 4-07-2016 को मुझे दिये थे। ये मेरे भतीजे हैं। अनेक फोटो सुलभ करवाने के लिए उनका आभार श्री मुकेश के अनुसार ब्राह्मणपुरी अवलदामान ग्राम मनावर अमझेरा सड़क पर मनावर से आठ किलोमीटर अमझेरा की ओर अवलदामान ग्राम से ढाई किलोमीटर दूर ब्राह्मणपुरी ग्राम है पास में सीतापुर ग्राम है। इस ब्राह्मणपुरी में यह शिव मन्दिर है। इसमें (काले) पत्थर का 3-4 फिट ऊँचा शिवलिंग है गर्भगृह में भित्ति पर गणेश की प्रतिमा लगी है। द्वार की ऊपरी चौखट में भी गणेश की प्रतिमा है। इससे स्पष्ट है कि यह मूलतः शिवमंदिर ही रहा। यह शिव मंदिर का शिवलिंग खंडित है। परन्तु पूजा आज भी जारी है।

इस मंदिर में ग्यारहवीं शती की प्राचीन नागरी लिपि में एक शिलालेख है। इसके अन्त में संवत् 1100 (1043) अंकित है।इस शिलालेख पर चार पंक्तियाँ अंकित हैं। उपलब्ध फोटो में पंक्तियों के दोनों ओर के अक्षर छूट गये हैं। इसलिए पूरा शिलालेख सामने नहीं है। उसका वाचन पुराविद श्री डॉ. जे.एन. दुबे ने किया। वह सम्भावित वाचन इस प्रकार है-

1. राज्ञी श्रीयमतुल देवी .....
2. राजपुत्र वाकि (चि.)ल वप्ती व
3. क्र प व सि (म्रि) क्ष धा ए देवि (चेदि ?)
4. भुवन (व) कि संमत 1100

इस लेख में रानी यमतुलदेवी, राजपुत्र, वाकि (चि)ल, चेदि (?) और संमत 1100 अंकित दिखाई देते है। संवत् 1100 विक्रम संवत् ही हो सकता है। क्योंकि मालवा क्षेत्र में उन दिनों विक्रम संवत् ही प्रयोग किया जाता था। और तह्कालीन इस क्षेत्र के ताम्रपत्रों, ताम्रपत्रों पर संवत् नाम से विक्रम संवत् का ही संकेत होता रहा। अतः यह विक्रम संवत है। विक्रम संवत् 1100 अर्थात 1043 ई. होता है। यह समय धार के परमार राजा भोजदेव (1000-1055ई.) का शासनकाल है। भोज का राज्यक्षेत्र मालवा सहित आसपास के दूर तक व्याप्त था। मनावर वर्तमान धार जिले की तहसील क्षेत्र की यह ब्राह्मणपुरी क्षेत्र तत्कालीन राजा भोज के राज्यक्षेत्र के अर्न्तगत ही रहा। अतः राजा भोज के शासन काल में यह मंदिर रानी यमतुलदेवी हेतु राजपुत्र (राजपुत) या राजकुमार बाकि (चि)ल की देखरेख में बनाया गया। एक शब्द देवी अथवा चेदी है। देवी से रानी का बोध होता है। चेदि शब्द हो तो तत्कालीन चेरि राज्य कुल से उसका सम्बन्ध हो सकता है।

यह उल्लेखनीय है कि राजा भोज का समकालीन यह प्रथम मन्दिर या स्थापत्य है जिस पर स्पष्ट तिथि है। भोजपुर के शिव मंदिर क्षेत्र से प्राप्त खंडित शिलालेख भी उस मंदिर में नही हैं अपितु वहाँ के जैन मंदिर में हैं। परन्तु ब्राह्मणपुरी के मंदिर में ही शिलालेख है और पूरा है पूरे शिलालेख का छापा या फोटो मिलने पर और भी स्पष्ट तथ्य ज्ञात होने की सम्भावना है।

मंदिर और परिसर के पन्द्रह फोटो प्राप्त हुए हैं। उनमें से दस मंदिर के और पाँच परिसर के स्थापत्य प्रतिमाओं के हैं। जो विवरण ज्ञात हुआ तदनुसार यह मंदिर एक प्रायः सौ वर्गफीट प्रशस्त और दस-बारह फीट समुन्नत जगती (प्लेटफार्म) पर बना है। भोजपुर का शिवमंदिर भी समुन्नत विस्तृत जगती पर बना है। इस मंदिर

का शिखर भाग खंडित है। परन्तु उसके बिखरे पत्थरों को वहाँ मन्दिर के ऊपर हो एक पर एक जमा दिया गया है। मंदिर की जंघा सुरक्षित और अलंकृत है। और भोजपुर मंदिर के स्थापत्य की याद दिलाती है।यह भी भूमिज शैली का मंदिर है जो परमारकालीन की विशेषता रही है। मंदिर के पीछे नाला बहता है।

मंदिर का द्वार भोजपुर द्वार के समान ही प्रशस्त, समुन्नत, अलंकृत, आनुपातिक और आकर्षक है। द्वार पर पुष्पवल्लरी के साथ ही सरस्वती, गणेश सहित चार देवी देवता हैं। उनके बीच में लास्य मुद्रा में सह देवता अंकित हैं।

मंदिर के गर्भगृह में तीन चार फीट ऊँचा खंडित शिवलिंग है दिवाल में तत्कालीन (खंडित) गणेश प्रतिमा है। मंदिर के चारों और नीले लहराता कंठा बना हुआ है मंदिर की भित्ति पर लास्य मुद्रा में खड़ी अलंकृत देवी देवताओं, सुन्दरियों की सुन्दर आर्कषण खंडित अखंडित प्रतिमाएँ बनी हैं। उनके ऊपर लता वल्लरियाँ बनी हैं। मंदिर परिसर में भी ऐसे शिल्प के अवशेष बिखरे हैं। भोजपुर मंदिर की भित्तियों पर भी ऐसी विभिन्न कई सुन्दर प्रतिमाएँ विद्यमान है। मंदिर की जितनी भित्ति अब सुरक्षित है वह अलंकृत और अत्यन्त आकर्षक है।

मंदिर परिसर में तत्कालीन प्रतिमा तथा स्थापत्यखंड बिखरे हैं। साथ ही कुछ परवर्ती स्तम्भ या सती स्तम्भ प्रतिमा सहित हैं। इस प्रकार भोजकालीन इस दुर्लभ स्थापत्य की सुरक्षा योग्य महत्ता है।

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन(म.प्र.)

चिराखान वन में विशाल गजप्रतिमा

मध्यप्रदेश के धार जिले के मनावर तहसील नगर के पास मान नदी के किनारे वन में चिराखान गाँव के पास जंगल में पत्थर का विशाल हाथी और अधबना गेंडा है वहाँ अन्य भी अधबनी प्रतिमाएँ हैं। यह मूर्ति निर्माण का केन्द्र रहा होगा।

हाथी की प्रतिमा विशाल है और प्रायः पूर्ण है। हाथी के दांत अधबना है या टूट गया है। पीठ पर रस्से या पट्टे के अलंकरण हैं। हाथी की सूँड का अग्रभाग भूमि पर चौकोर खंड में लीन है इस गजप्रतिमा के सामने के पैर पर ईसवी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है जो डॉ. जे. एन. दुबे ने इस प्रकार पढ़ा है।
(श्री) मद भीमदे (व) अंकित है।

उज्जैन के पिंगलेश्वर में चतुर्मुखी शिवप्रतिमा है। उसमें दो मुखों के मध्य एक सूँड बनी है। उसके भी अग्रभाग की भूमि पर उपर्युक्त के सामन ही चौकोर खंड बना है। वह पात्र या मोदक या रोट हो सकता है। इस प्रतिमा पर भी भीमदेव, महीदेव, विक्रमदेव आदि नाम ईसवी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी लिपि में अंकित हैं। उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के अन्य नाम या उपाधियाँ भीमदेव, महीदेव भी थे जो उनके द्वारा निर्मित कई प्रतिमाओं और सिक्कों पर भी अंकित हैं इससे ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा विक्रमादित्यकालीन और विक्रमादित्य के निर्देश से बनी थीं। इस क्षेत्र की अन्य प्रतिमाओं के सूक्ष्म निरीक्षण परीक्षण से तत्सम्बन्धी अन्य तथ्य भी प्रकाश में आ सकते हैं। पिंगलेश्वर प्रतिमा तथा प्रतिमा की गजशुंड की एकरूपता से यह भी संभावना हो सकती है कि उन दोनों प्रतिमाओं का कर्त्ता एक ही है तथा यह भी संभव है कि उज्जैन की यह प्रतिमा चिराखान की पूर्वोक्त कार्यशाला से ही बनवाकर उज्जैन में प्रतिष्ठित की गई हो।

अगले पैर पर ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी लिपि में अंकित (श्री) मद भीमदे (व)

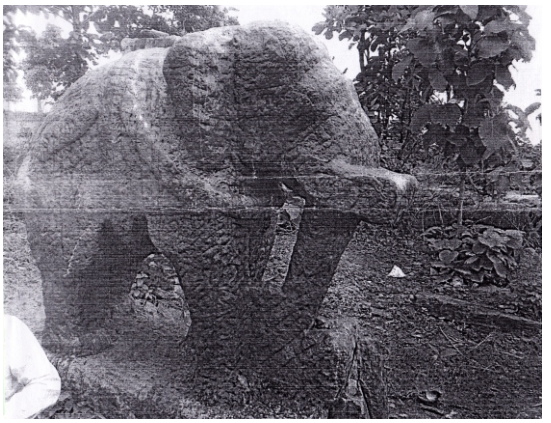

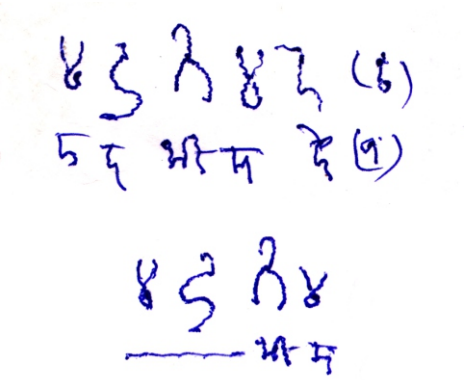

मनावर (जिला धार) के पास मान नदी के किनारे चिराखान गाँव के पास जंगल में पत्थर का हाथी और अधबना गेंडा।

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन(म.प्र.)

महाकवि श्री सोमदेवभट्ट विरचित

''कथा सरित्सागर'' के आलोक में ''विक्रमादित्य''

भारतवर्ष के इतिहास में कलिकाल में जो पुण्य प्रतापी सम्राट अवतीर्ण हुये हैं उनमें परम वन्दनीय हैं अवन्ती महाजनपद के गोविप्रसंरक्षक, नीरक्षीर विवेकी, प्रजावत्सल, महान् न्यायप्रिय महाराजाधिराज सम्राट् विक्रमादित्य। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में जिस समय सनातन वैदिक धर्मपरायण भारतीय हिन्दू आर्य जनता म्लेच्छ शकों के दुर्दान्त आतङ्क से सर्वथा त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कहकर परमपिता परमेश्वर से आर्त्तत्राण हेतु प्रतिक्षण प्रार्थना कर रही थी, तभी अहैतुककरूणावलय श्री हरि के अनुरोध, तथा भृत्यानुग्रहकातर साम्बसदाशिव के कृपाप्रसाद से आपका प्राकट्य महाराज महेन्द्रादित्य के राजप्रासाद में हुआ। विक्रम अर्थात् पराक्रम में आदित्य सूर्य के समान परम तेजस्वी होने के कारण दैवज्ञजनों ने लक्षणानुरूप ही आपका नामकरण 'विक्रमादित्य' अभिधान के साथ किया। मालवगणों के अध्यक्ष होने से 'मालवगणाध्यक्ष' तथा शकों (म्लेच्छ आततायियों) के परम शत्रु (अरि) होने से 'शकारि' आदि विरुदो से समलङ्कृत हुये। आपके जिन दिव्य पराक्रमी गुणगणों से आकर्षित होकर समकालीन महाकवि गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृतभाषा में प्रणीत 'बृहत्कथा' ग्रन्थ में तथा प्राकृतभाषानिबद्ध'गाहासत्तसई' (गाथासप्तशती) में महाकवि हाल ने यशोगान किया है। सुरभारती संस्कृतभाषा में 'बृहत्कथामञ्जरी' के प्रणेता आचार्य क्षेमेन्द्र (ग्यारहवीं शताब्दी) के कुछ समय बाद ही काश्मीरी आचार्य श्रीसोमदेव भट्टमहाभाग ने ईस्वी सन् 1063 और 1081 ई. वर्ष के मध्य विरचित अपने ग्रन्थरत्न 'कथासरित्सागरः में हमारे प्रतिपाद्यचरितनायक 'सम्राट् विक्रमादित्य' का पुष्कल विशद चरितवर्णन उपस्थापित किया है। महाकवि ने त्रिगर्त्तदेश (कुल्लूकाङ्गड़ा) के राजा की सुपुत्री तथा काश्मीर महाराजा अनन्तसिंह की महारानी सूर्यमती के मनोविनोदार्थ अट्ठारह 18 लम्बकों (परिच्छेदों) जो कि समग्ररूप से एक सौ चौबीस 124 तरङ्कों में विभक्त तथा इक्कीस हजार छह सौ अट्ठासी 21688 श्लोकों में निबद्ध कथासरित्सागरः की संरचना की है।[1]

महाकविसोमदेव भट्ट महारानी सूर्यमती को नृपतिवरवीर विक्रमादित्य की विकलकीर्त्ति कौमुदी का श्रवण कराते हुये कहते हैं - असितगिरि मे स्थित, महर्षिकश्यप के आश्रम (काश्मीर प्रदेश) में नरवाहनदत्त ने मुनियों से कहा कि भगवती देवी के दर्शनलालसा अथवा देवी (रानी) के विरह में मैं यहाँ आया था। यहाँ पर मैंने महामुनिकण्व को प्रणाम किया और वे मुझे आश्रम में ले जाकर बोले तुम सोमवंश में उत्पन्न हो अतः तुम जैसे पराक्रमी वीर को मोहग्रस्त नही होना चाहिये -

असम्भाव्या अपि नृणां भवन्तीह समागमाः।
तथा हि विक्रमादित्यकथामाख्यामि ते श्रृणु।।8।।
अस्त्यवन्तिषु विख्याता युगादौ विश्वकर्म्मणा।
निर्मितोज्जयिनी नाम पुरारिवसतिः पुरी।।9।।[2]

अर्थात् इस पवित्र भूमि पर मनुष्यों के लिये समागम (सम्मिलन) असम्भव भी है। अब मैं वीर विक्रमादित्य की कथा कहता हूँ तुम उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करो। युग के प्रारम्भ में विश्वकर्म्मा ने अवन्ती महाजनपद में उज्जयिनी नाम की नगरी का निर्माण किया है जो कि त्रिपुरसंहारक भगवान शिव की मोक्षदायिनी पुरी है।

उज्जयिनी नगरी सती स्त्री की तरह दूसरो के द्वारा अधृष्या, पद्मिनी (कमलिनी) के समान शोभाशालिनी, सज्जन महानुभावों की बुद्धि की तरह धर्माचरण में प्रवृत्तिपरायणा और पृथिवी के समान बहुविध कौतुकमयी है। तीनों लोकों में विजय प्राप्त करने वाला 'महेन्द्रादित्य' इस पुरी का राजा था -

'महेन्द्रादित्य इत्यासीद्राजा तस्यां जगज्जयी' ।। 11 पूर्वार्द्धः ।।[3]

इस राजा की 'सौम्यदर्शना' नामकी महारानी थी। सुमति नाम का महामन्त्री था। वज्रायुध नामक प्रतीहार था। नानाविध व्रतों का पालन एवं सानुशासन राज्यसञ्चालन करते हुए एक बार यह राजा पुत्रप्राप्ति की कामना तथा म्लेच्छ को हूणों आदि के आतङ्क से दुःखी होकर देवराज इन्द्र सहित देवताओं को साथ लेकर कैलासपर्वत पर भगवती पार्वती सहित विराजमान त्रिपुरारि शङ्कर भगवान के पास जाकर अपना विचार प्रकट किया -

म्लेच्छाक्रान्ते च भूलोके निर्वषट्कारमङ्गले।
यज्ञभागादिविच्छेदादेव लोकोऽवसीदति।।22।।[4]

हे भगवन्। आप ऐसा उपाय करके पृथ्वी पर कोई अवतार लें, जो इन म्लेच्छों से भारतमाता का कष्ट दूर कर सकेगा -

तदुपायं कुरूष्वात्र तं कञ्चिदवतारय।
प्रवीरं भूतले यस्तान्म्लेच्छानुत्सादयिष्यति।।23।।[5]

उज्जयिनीनरेश महेन्द्रादित्य को पूर्णतः आश्वस्त करके देवाधिदेव महादेव ने अपने माल्यवान नामक गण को आदेश दिया कि वह शिवांशजन्मा महेन्द्रादित्य तथा अम्बिकांशजा महारानी के गृह में पुत्ररूप से अवतीर्ण होकर देवताओं का धर्मसंस्थापन तथा प्रजाजन संरक्षणदि का विश्वकल्याण कार्य सम्पादित करें। तदनुसार वह गणोत्तम माल्यवान महारानी के गर्भ में प्रविष्ट हो गया। शिवजी ने राजा को स्वप्न में आदेश दिया कि यह मेरा माल्यवान नामक गण आपके यहाँ पुत्ररूप में 'विक्रमादित्य' नाम से प्रख्यात होगा तथा शत्रुसमुदाय के प्रति अत्यन्त विषमता, निष्ठुरता का व्यवहार करेगा अतः यह विषमशील नाम से विश्वविश्रुत होगा -

भविष्यत्यत एवैष विक्रमादित्यसञ्ज्ञकः।
तथा विषमशीलश्च नाम्ना वैषम्यतोऽरिषु।।39।।[6]

गर्भवासकाल व्यतीत हो जाने पर यथासमय महस्वी पुत्र का जन्म हुआ उज्जयिनी पुरी उत्सत्वानन्द में निमग्न हो गयी। महेन्द्रादित्य महाराज द्वारा प्रभूत मात्रा में धनवर्षा की गयी। उस समय सौगत (बुद्ध)के अतिरिक्त कोई भी अनीश्वरवादी नही था अर्थात् सभी ईश्वरभक्त थे। महाराज ने अपने सुपुत्र का नाम शिवजी की आज्ञानुसार ' विक्रमादित्य' तथा 'विषमशील' ऐसा रखा।

नाम्ना तं विक्रमादित्यं हरोक्तेनाकरोत्पिता।[7]
तथा विषमशीलं च महेन्द्रादित्यभूपतिः ।।51।।

राजकुमार विक्रमादित्य क्रमशः समय व्यतीत होने पर सुमति नामकमंत्री पुत्र महामति, क्षत्रिय व्रज्रायुध के पुत्र भद्रायुध तथा महीधर पुरोहित के पुत्र श्रीधर के साथ बढ़ने लगा परम तेज, बल और पराक्रम के साथ, -

तैस्त्रिभिर्मन्त्रितनयैः सह राजसुतोऽत्र सः।
ववृधे विक्रमादित्यस्तेजोवीर्यवलैरिव।।54।।[8]

भागवान शङ्कर के अमोघ आशीर्वाद से जन्म होने के कारण उपनयनादिसंस्कार सम्पन्न होने के

पश्चात् गुरुजन तो केवल हेतु (निमित्त) मात्र थे, राजकुमार विक्रमादित्य तत्तद विद्याओं को बिना किसी प्रयास के सहजरूप से अर्जित कर लेता था। समस्त विद्याओं तथा कलाओं के साथ ही दिव्यास्त्र सञ्चालन विद्या में भी सर्वथा निष्णात हो जाने पर प्रजाजन भी राजकुमार को धनुर्धर भार्गव परशुराम से भी अत्यन्त श्रेष्ठ समझते थे। महेन्द्रादित्य के वशवर्त्ती राजाओं ने सविनयभाव से अपनी सुरूपवती कन्याओं का विवाह राजकुमार विक्रमादित्य के साथ करने हेतु समर्पित कर दी तब महाराज ने उन अपरा लक्ष्मीस्वरूपा कन्याओं का ब्राह्म विधि से युवराज का विवाह संस्कार सम्पन्न कराकर उन्हें श्रुतिपरम्परानुसार महाराज पद पर पट्टाभिषेक्त कर दिया। और स्वयं सपत्नीक सचिव को साथ लेकर वृद्धावस्था में अन्ततः वाराणसी (काशी)में जाकर भगवान श्रीविश्वनाथ ज्योर्तिलिङ्ग के शरणापन्न होकर शिव समाराधन में प्रवृत्त हो गये। इधर, उज्जयिनी में नवभिषिक्त महाराज विक्रमादित्य अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करके उसी प्रकार अपना प्रतापी प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया जिस प्रकार गगनमण्डल में अवस्थित भुवनभास्कर अपनी प्रचण्डता प्रकट करते हैं,

महेन्द्रादित्यनृपतिः सभार्या सचिवोऽपि सः।
वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिश्रिये शिवम्।।60।।
सोऽपि तद्विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पैतृकम्।
नभो भास्वानिवारेभे राजा प्रतपितुं क्रमात्।।61।।[9]

जिस प्रकार धनुष की प्रत्यञ्चा की डोरी चढ़ी हुयी होने पर भी महाराज विक्रमादित्य को देख करके ही झुक जाती है। उसी प्रकार उससे शिक्षा प्राप्त करके महाराज को देखते ही सम्पूर्ण नरेशों के उठे हुये शिर सम्मानस्वरूप झुक जाते थे। आपने उत्पथगामी दिव्यानुभाव वेताल राक्षस प्रभृति सभी का साधन करके अनुशासित किया। आपकी सेनाएँ सम्पूर्ण भूमण्डल पर सभी दिशाओं में राज्यविस्तार तथा प्रजापालन में भी तत्पर रहती हुई ऐसी सुशोभित होती थीं जैसे सूर्य से निकल रही रश्मियाँ (किरणें) हों -

प्रसाधयन्त्यः ककुभः सेनास्तस्य महीतले।
निश्चेरुर्विक्रमादित्यस्यादित्यस्येव रश्मयः।।64।।[10]

सम्राट् विक्रमादित्य महापराक्रमशाली होते हुये भी सनातन धर्मशास्त्रपरम्परावर्णित परलोक सिद्धान्त को भीरूपुरुष के समान सादर स्वीकार करते थे जिससे न्यायिक तथा प्रशासन प्रक्रिया में कहीं प्रमादवश अधर्माचरण न हो जाये। शूरवीर होते हुये भी उदारपाणि (दानशील, क्षमाशील) थे। पृथ्वीमण्डल के स्वामी होते हुये भी धर्मपत्नीव्रत परायण थे। जिनके पिता (संरक्षक) आदि नहीं होते थे उनके आप ही स्वयं पिता थे। जिनके बन्धुजन नहीं होते थे उनके आप ही बान्धव थे। अनाथजनों के एकमात्र आप ही नाथ (स्वामी) थे। इस प्रकार जिसके प्रजावर्ग में जो सम्बन्धी, पिता, बन्धु आदि के अभावग्रस्त होते थे। उस समय उनके लिये आप क्या नहीं बन जाते थे? अर्थात् आप सबके सब कुछ थे -

महावीरोऽप्यभूद्राजा स भीरूः परलोकतः।
शूरोऽपि चाचण्डकरः कुभर्त्ताप्यङ्गनाप्रियः।।65।।
स पिता पितृहीनानामबन्धूनां स बान्धवः।
अनाथानां च नाथः स प्रजानां कः स नाभवत्?।।66।।[11]

पितामह ब्रह्मा की सृष्टि में श्वेतद्वीप, क्षीरसिन्धु, कैलासपर्वत तथा हिमालय पर्वत की जो धवलता, उज्ज्वलता तथा निष्कलङ्कता है। वह महाराजविक्रमादित्य के विमल यश का उपमान सिद्ध हो गयी। एक बार विक्रमादित्य पूर्वोक्त उस स्थान को गये। जहाँ पर प्रवेश करके भद्रायुध नामक प्रतीहार ने बतलाया।

एकादा च तमास्थानगतं भद्रा युधो नृपम्।
प्रविश्य विक्रमादित्यं प्रतीहारो व्यजिज्ञपत्।।68।।[12]

सन्दर्भ :-

1. क. विण्टरनित्ज कृत ''भारतीयसाहित्य का इतिहास, भाग 3 खण्ड एक : संस्कृतकाव्य का इतिहास- पृष्ठ 76- अनुवादक पं. सुभद्रझा।
   ख. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 441, आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. कथासरित्सागरः, लम्बकः 18/तरङ्गः 1/श्लोकौ 8-9 (विषमशीलो नाम लम्बकः)।
3. कथासरित्सागरः 18/1/11 पूर्वार्द्धः
4. कथासरित्सागरः 18/1/22
5. कथासरित्सागरः 18/1/23
6. कथासरित्सागरः लम्बकः 18/तरङ्ग 1/श्लोकः 31 (विषमशीलो नाम लम्बकः)।
7. कथासरित्सागरः 18/1/51
8. कथासरित्सागरः 18/1/54
9. कथासरित्सागरः लम्बकः 18/तरङ्ग 1/श्लोकौ 60-61 (विषमशीलो नाम लम्बकः)।
10. कथासरित्सागरः 18/1/64
11. कथासरित्सागरः 18/1/65-66 श्लोकौ
12. कथासरित्सागरः 18/1/67

आचार्य डॉ. सदानन्द त्रिपाठी
शासकीयः संस्कृत महाविद्यालयः उज्जयिनी (म.प्र.)

कथासरित्सागर एवं बृहत्कथा में विक्रमादित्य

भारतवर्ष के मध्यदेश में अवस्थित है- 'अवन्ती' । रक्षार्थक अव् -धातु से 'शतृ एवं 'ङीप् प्रत्यय लगकर निष्पन्न 'अवन्ती' दो कारणों से अपने अवन्ती (रक्षा करती हुई) इस अभिधान को सार्थक करती है। प्रथम यह देवाधिदेव भगवान महाकाल का अधिष्ठान है, द्वितीय यह धर्म के रक्षक, विक्रम संवत प्रवर्तक 'शकारि' विक्रमादित्य की नगरी है।

'विक्रमादित्य' भारतीय जनमानस में एक ऐसा जात्वल्यमान नाम है, जिसकी आभा 2072 वर्षों के अतीत हो जाने के बाद भी अपनी पूर्ण दीप्ति के साथ विराजमान है। प्राचीन भारतीय साहित्य, अनुश्रुतियों, किम्बदन्तियों, सुभाषितों, गाथाओं, लोककथाओं के साथ ही प्राचीन भारतीय मुद्राओं मुहरों और अभिलेखों में वे पराक्रमी, प्रजारञ्जक, न्यायप्रिय दानशील लोकनायक के रूप में विद्यमान हैं। वे भारतीय इतिहास के 'उपाधिपुरुष' हैं और साहित्य जगत् के कथापुरुष भी । संस्कृति कथा संसार के प्रतिनिधिग्रंथ - 'वेतालपञ्चविंशति' एवं सिंहासनद्वात्रिंशिका' के साथ ही शुक सप्तति' कथासरित्सागर' एवं बृहत्कथामञ्जरी की एकाधिक कथाओं के वे नायक है। इन में से अधिकांश कथा ग्रंथों का आधार गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' या 'बड्ढकहा' है, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है। गुणाढ्य का समय सातवाहन शासक हाल के आधार पर 78 ई. के लगभग माना गया है। यह समय महान् सम्राट् विक्रमादित्य से सौ या उससे भी कम पश्चात् का है। अतः इन कथाओं में अतिरञ्जकता कम एवं प्रामाणिकता अधिक है। प्रस्तुत आलेख में बृहत्कथा पर आधारित 11 वीं श. के दो प्रतिनिधि कथा ग्रंथों सोमदेव के कथासत्सागर एवं क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी के आधार पर विक्रमादित्य के व्यक्तित्व एवं चरित को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

कथासरित्सागर के षष्ठ, सप्तम, अष्टम, द्वादश एवं अष्टादश लम्बक में विक्रमादित्य की कथा वर्णित है । बृहत्कथामंजरी सप्तम, दशम एवं चतुर्दशलम्बकों में यह कथा निबद्ध है । प्रस्तुत आलेख में कथासरित्सागर एवं बृहत्कथा मञ्जरी के 'विषमशील-लम्बक' क्रमशः 18 एवं 10 को ही आधार बनाया गया है ये कथायें कश्यप मुनि के आश्रम में मुनि कण्वड द्वारा अपनी पत्नी मदनमञ्जुका के वियोग में वन में भटकते हुये, प्राणत्याग के इच्छुक नरवाहनदत्त को सान्त्वना देते हुये कहीं गई है।

देवादेशे ध्रुवेऽनास्था का भार्यासङ्गमे तव।
तथा हि विक्रमादित्य कथामाख्यामि ते श्रृणु।।[1]

इसी प्रकार बृहत्कथामञ्जरी में कथारम्भ में कहा गया है।

विधातुरानुकूल्येन प्राप्यन्ते हारिता अपि।
वने धनसुहृद् बन्धुदयिताराजसम्पदः ।।[2]

अर्थात् विक्रमादित्य की ये कथायें हताशा में आशा का संचार करने वाली आत्मघात के लिये तत्पर में जिजीविषा जगाने वाली, कायर को पुरुषार्थी और असम्भव को सम्मव करने वाली कथायें हैं।

कथाओं का प्रारम्भ होता है विक्रमादित्य के जन्म की कथा से अवन्ती जनपद में उज्जयिनी नामक पुरी है जहाँ स्वयं त्रिपुरारि शिव निवास करते हैं। वहाँ महेन्द्रादित्य नामक अत्यंत पराक्रमी राजा हुये । उन महेन्द्रादित्य एवं उनकी पत्नी सौम्यदर्शना ने पुत्रप्राप्ति के लिये अनेक वर्षों तक तप-अनुष्ठान किये। उधर भूलोक पर म्जेच्छों के अत्याचारों से सन्तप्त देवगण इन्द्र के साथ कैलाशतर्वत पर भगवान् शिव के पास पहुँचे एवं किसी

श्रेष्ठ वीर को धरती पर अवतारित करने को प्रार्थना की -

तदुपायं कुरुष्वात्र तं कञ्चिदवतारय।

प्रवीरं भूतले यस्तान्म्लेच्छानुत्सादयिष्यति।।[3]

तब भगवान् शिव ने माल्यवान् नामक गण को उज्जयिनी में महेन्द्रादित्य के पुत्र के रूप में जन्म लेकर देवकार्य सम्पादित करने का आदेश दिया। साथ ही यह आशीर्वाद भी दिया कि वह त्रयीधर्म के विघातक म्लेच्छों का विनाश कर सप्तद्वीपों का अधिपति, यक्ष राक्षस एवं वेतालों को वश में रखने वाला, मानुष दुःखों से रहित आजीवन सुखी होगा। भगवान् शिव ने महेन्द्रादित्य को स्वप्न में दर्शन देकर कहा -

तुष्टोऽस्मि तव तद्राजन्स ते पुत्रो भविष्यति।

आक्रमिष्यति सद्वीपां पृथिवीं विक्रमेण यः।

भविष्यत्यत एवैष विक्रमादित्यसंज्ञकः।

तथा विषमशीलश्च नाम्ना वैषम्यतोऽरिषु।।[4]

इस जन्मकथा से विक्रमादित्य के संबंध में निम्नलिखित तत्त्वों का ज्ञान होता है।

1. विक्रमादित्य उज्जयिनी के शासक महेन्द्रादित्य के पुत्र थे। महाकवि कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में पुरुखा के लिये 'विक्रम' एवं इन्द्र के लिये महेन्द्र' शब्द का साभिप्राय प्रयोग क्रमशः इन्ही विक्रमादित्य एवं उनके पिता महेन्द्रादित्य के लिये किया है।

'दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिमा वर्धते भवान्'।[5]

अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः 'आदि।[6]

विक्रमोर्वशीयम् में महेन्द्र शब्द का प्रयोग 14 बार हुआ है।[7]

जबकि अन्य रचनाओं में यह विरल ही है। वहाँ इन्द्र के अन्य पर्यायों का प्रयोग है।

'अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः' का भाव साम्य कथा सरित्सागर के उस वर्णन में पाया जाता है, जहाँ विक्रमादित्य द्वारा किये गये बड़े से बड़े उपकार को भी स्मरण न रखने की बात कहकर उनकी निरभिमानिता एवं महा-आशयता को व्यक्त किया गया है।

इत्युक्तोऽनङ्गदेवेन विक्रमादित्यभूपतिः

कृतं दुःसाध्यमपि तद्यक्षिणीरक्षणं स्मरन्।।

नामन्यत तृणायापि श्रुत्वा तत्प्रत्युपक्रियाम्।

बहु कृत्वापि मन्यन्ते स्वल्पमेव महाशयाः।।[8]

2. विक्रमादित्य कल्पना पुरुष नहीं अपितु इतिहास पुरुष थे।

आदित्यवत् तेजस्वी एवं पराक्रमी होने के कारण वे 'विक्रमादित्य' कहे गये। शत्रुओं के प्रति वैषम्य भाव था असहिष्णुता के कारण विषमशील कहलाये। दोनों ही कथा ग्रंथों में उन्हे 'विषमशील' कहा गया है।[9] इसी नाम से लम्बक का नामकरण भी हुआ है। पाकिस्तान में, मुल्तान से भी आगे, लोकगीतों मे यह तथ्य अभी भी संरक्षित है।

''वीर विक्रमाजीत, दुश्मणदा दुश्मण ते मितरां दा मीत।''[10]

माना जाता है कि रघुदिग्विजय के माध्यम से महाकवि कालिदास ने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य के ही पराक्रम का वर्णन किया है। शत्रुओं के प्रति उनके पराक्रम को कालिदास ने असह्य विक्रमः,[11]

व्यक्तविक्रमम्[12] आदि के द्वारा व्यक्त किया है।

विक्रम एवं आदित्य वैदिक परम्परा से प्राप्त अभिधान हैं। विक्रम एवं त्रिविक्रम पद का प्रयोग विष्णु के सन्दर्भ में उनके पादक्षेपों के लिये हुआ है-

त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा..... अतो धर्माणि धारयन्।[13]

विक्रमादित्य का अवतरण भी विष्णु के सदृश असुरों-म्लेच्छों या शकों को परास्त कर आर्यजनों और धर्म की रक्षा के लिये हुआ था। बृहत्कथामञ्जरी में उन्हे विशेष रूप से 'म्लेच्छोच्छादन दीक्षितः'[14] कहा गया है। विष्णु ने जैसे असुरों से भूमि प्राप्त की थी[15] उन्होने भी अपने विक्रम से शकों को परास्त कर मालव भूमि को अधिगत किया था। इस महान घटना का प्रमाण पुरातात्विक उत्खननों और सर्वेक्षणों से प्राप्त वे मुद्रायें हैं, जिनपर ब्राह्मी लिपि में 'मालवानां जयः' अंकित है।[16] कुछ मुद्राओं पर संक्षिप्त अक्षर हैं। श्री डी.आर.भण्डारकर के अनुसार ब्राह्मीलिपि में अंकित 'ग ज व' 'गणस्य जय विक्रम' है, मगजव' मालवगणस्य जय विक्रम' है।[17]

'श्री विक्रम' एवं 'उज्जयिनी' नामाँकित अश्वमेध प्रकार की प्राप्त मुद्रायें विक्रमादित्य को 'उज्जयिनीनाथ' सिद्ध करती है। ऐसी कुछ मुद्रायें अश्विनी शोध संस्थान महिदपुर (उज्जैन) में संरक्षित हैं।

3. शिव के गण का विक्रमादित्य के रूप में अवतरण जहाँ अवतारवाद की भारतीय पौराणिक अवधारणा को पुष्ट करता है। वहीं विक्रमादित्य के अलोकसामान्य अतिमानवीय गुणों को भी व्यञ्जित करता है, जैसा कि गीता में कहा गया है -

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जिऽशतमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।।[18]

4. विक्रमादित्य के तेजस्वी भव्य व्यक्तित्व की जो छबि कथासरित्सागर में प्रस्तुत की गई है, उसमें उन्हे ज्वलन्निव तेजसा, कृपाणपाणि' के रूप में चित्रित किया गया है[19] उनके तेज से दिशाओं को भी प्रज्ज्वलित की भाँति कहा गया है।

आपश्याव दिशः सर्वा ज्वलन्ती स्तस्य तेजसा।[20]

बृहत्कथामञ्जरी में यह चित्र अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत है-

विलोलकुण्डलः खड्गी राजा राजीवलोचनः।।
उत्साह इव साकारः प्रत्यक्ष इव विक्रमः।
गम्भीर मधुरोदार दृशा निर्वापयन्निव।।
मां समाश्वास्य दलयंस्तमों दन्तांशुसंचयैः।
आदिदेशाशु पुरतो वेतालं तद्विनिग्रहे।।[21]

ये चित्र रात्रि के समय सुख शैरया छोडकर 'वीरचर्चा' के लिये निकले विक्रमादित्य के है। किसी आर्त या विपत्तिग्रस्त द्वारा रक्षा के लिये पुकारे जाने पर वे चामत्कारिक रूप से वहाँ उपस्थित होकर उसकी रक्षा करते थे। ऐसी कई कथायें कथासरित्सागर एवं बृहत्कथामञ्जरी में प्राप्त होती हैं।

5. उनकी इस उपकारी प्रवृत्ति और आर्तत्राण के स्वभाव ने अल्पआयु में ही उन्हे लोकप्रिय बना दिया था। जनप्रिय प्राज्यविक्रम पुत्र के युवा होने पर पिता महेन्द्रादित्य ने यथाविधि उनका राज्याभिषेक कर वाराणसी जाकर भगवान शिव का आश्रय लिया था।[22]

मेरुतुङ्गाचार्य की पट्टावली मेंकालकाचार्य कथानक के अन्तर्गत प्रमाणित किया गया है कि गर्दभिल्ल ने शकों से विजयश्री प्राप्ति के उपरान्त अपने युवा कुमार विक्रम को राजसिंहासन देकर वन की ओर प्रस्थान किया था।

बृहत्कथामंजरी में पिता की मृत्यु के पश्चात् विक्रमादित्य द्वारा शासन किये जाने की बात कही गई है, जो अधिक उचित प्रतीत होती है।

राजा विषमशीलोऽथ जनके प्रशमं श्रिते।
श शास वसुधां धन्वी म्लेच्छोच्छादन दीक्षितः ।।[23]

6. कथा सरित्सागर के अनुसार महेन्द्रादित्य शिवोपासक या शैवधर्मावलम्बी थे। विक्रमादित्य के समय की 'विक्रम' नामाँकित शिव प्रकार की ताम्रमुद्रायें (जिनके पुरोभाग में जटा मुकुट, दण्ड, कमण्डल धारण किये हुये शिव, दाहिनी ओर ब्राह्मी लिपि में राजा विक्रम लेख, बाँई ओर वेदिका वृक्ष तथा मुद्रा के पृष्ठ- भाग में उज्जयिनी चिन्ह अंकित है) विक्रमादित्य को भी शैव सिद्ध करती हैं। कहा जाता है कि विक्रमादित्य ने ही उज्जयिनी में महाकाल मंदिर का निर्माण कराया था।

7. कथासरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य का प्रताप शत्रुओं को इस प्रकार संतप्त करने लगा जिस प्रकार आकाश में चढ़ता हुआ सूर्य। उनके धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाते ही सभी दिशाओं के राजा नतमस्तक होने लगे। अनाचारी वेताल राक्षस आदि भी उनके दिव्य गुणों से प्रभावित होकर उनके अनुशासन में रहने लगे। उनकी सेना समग्र पृथिवी पर इस प्रकार प्रस्थान करने लगीं जैसे सूर्य की रश्मियाँ।[24] बृहत्कथामञ्जरी के अनुसार स्वर्ण सिंहासन पर अधिष्ठित वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों सुमेरुशिखर पर आरूढ़ सूर्य हों -

सुमेरु चूडामणितां प्रयातमिव भास्करम्।[25]

8. आक्रान्त राजाओं ने अपनी कन्यायें उन्हे सौपी। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की उक्ति को सार्थक करते हुये वे पृथिवी के साथ ही अनेक कन्या रत्नों के भी पति बने। सिंहलराज ने योग्य वर जानकर स्वयं अपनी कन्या मदनलेखा उन्हे प्रदान की -

अस्ति मम सर्वसर्वस्वं कन्यारत्नमनुत्तमम्।
विक्रमादित्यदेवश्च रत्नानां भाजनं विभुः ।।[26]

मिल्लराज की कन्या मदनसुन्दरी पातालराज की कन्या सुरूपा, मलयपुर की मलयवती, कलिंगराज की पुत्री कलिंगसेना आदि को उन्होनें अपने पराक्रमों और गुणों से प्राप्त किया। विस्मय, रहस्य, रोमांच और अदभुत रस से भरी हुई ऐसी अनेक कथायें इस सन्दर्भ में प्राप्त होती हैं।

9. इन कन्यायों को प्राप्त करने के प्रसंग में ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन है, जो अन्यत्र भी संस्कृत साहित्य में प्राप्त हैं।

i. उदाहरण के रूप में जब सिंहलराज वीरसेन अपनी कन्या मदनलेखा को विक्रमादित्य की वधू बनाने के लिये भेजते है,

तब ईर्ष्यावश म्लेच्छ शक शासक मिलकर उस कन्या का हरण करने के लिये उसके सेनापति या सामन्त (विदर्भराज) विक्रमशक्ति पर आक्रमण कर देते हैं।

सिंहलेन्द्रेण तनयां वितीर्णां शौर्यशालिनीम्।
ज्ञात्वा विषमशीलाय सर्वे म्लेच्छशकाभिधा।।
हर्तुमभ्युद्यताः पापा .....।

ततो विदर्भ राजेन तेषां विक्रमशक्तिना
वभूव सुचिरं युद्धं विस्मयाद्वीक्षितं सुरैः ।।[27]

ठीक ऐसा ही वर्णन रघुवंशम् में इन्दुमती स्वयम्वर के पश्चात् विदर्भ से लौटते हुये अज के प्रसंग में हुआ है।

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्या रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजहुर्युधि सर्व एव।।[28]

ii कथासरित्सागर एवं बृहत्कथामञ्जरी में मृगया के लिये निकले विक्रमादित्य के बाणों के प्रहार से गज और वराह रूप की देवकुमारों की शाप मुक्ति का प्रसंग,[29] रघुवंश के पंचम सर्ग में वर्णित नर्मदा से निकले वन्य गज के अज द्वारा चलाये गये इषु से विद्ध होने पर गंधर्वकुमार प्रियम्वद की शाप मुक्ति को प्रसंग[30] से पूर्णतः साम्य रखता है। ऋषि के शाप से वे गज बने थे। रघुवंश के अनुसार शॉप मुक्ति का उपाय बताते हुये मतङ्ग ऋषि ने कहा था -

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना। तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम्।।

कथासरित्सागर के अनुसार कण्व मुनि द्वारा कहा गया था।

अटव्यामीदृशावेव भवतं गजसूकरौ।
विक्रमादित्यभूपेन हतो मुक्तिमवाप्स्यथः ।।[31]

iii कथासरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य ने कलिङ्गसेना को पहले एक देवकुल में स्तम्भ पर उत्कीर्ण स्तम्भ पुत्रिका के रूप में देखा था

सविशेषामपश्याम रूपेण स्तम्भपुत्रिकाम्।
राजा तु तं विलोक्यैव तल्लावण्यविमोहितः
शून्यः स्तब्धः श्रणं सोऽपि स्तम्भोत्कीर्ण इवाभवत्।।

तत्पश्चात उन्होने उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

यह कथा सूत्र राजशेखर (10 वीं श.) रचित नाटिका विद्शाल मञ्जिका का मुख्य आधार बना है।

10. विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित विक्रमसंवत् का उल्लेख, बिहार, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि से प्राप्त शिलालेखों, दानपत्रों, ताम्रपत्रों आदि में प्राप्त होता है, जो इन प्रान्तों में विक्रमादित्य के प्रभाव को सूचित करता है कथासरित्सागर इन के अतिरिक्त दक्षिणभारत में भी उनके आधिपत्य का वर्णन करता है विक्रमादित्य के सेनापति विक्रमशक्ति द्वारा अधीन किये गये प्रदेशों का विवरण दूत अनंगदेव द्वारा इस प्रकार दिया गया है।

सापरान्तश्च देवेन निर्जितो दक्षिणापथः।
मध्यदेशः ससौराष्ट्रः सवङ्गाङ्गा च पूर्वदिक्।।
सकश्मीरा च कौबेरी काष्ठा च करदीकृता।
तानि तान्यपि दुर्गाणि द्वीपानि विजितानि च।।
म्लेच्छसंधामृच निहताः शेषाश्च स्थापिता वशे।
ते ते विक्रमशक्तेश्च प्रविष्टाः कटके नृपाः।।

इनमें से कतिपय अधीनस्थ राजाओं या सामन्तों के नाम भी दिये गये हैं, जैसे कि गौडदेश के शक्ति

कुमार, कर्णाट के जयध्वज, लाटदेश के विजयवर्मा, कश्मीर के सुनन्दन, सिन्धुराज गोपाल, भिल्ल अधिपति विन्ध्यबल, पारस के निर्मूक आदि।[35]

इन नामों की ऐतिहासिकता पर शोध अपेक्षित है।

ii इन कथाओं में महाराज विक्रमादित्य को प्रजा का सच्चा रक्षक एवं दुःखियों, दीनों अनाथों का पालक कहा गया है -

स पिता पितृहीनानामबन्धूनां स बान्धवः।
अनाथानां च नाथः स प्रजानां कः स नामवत्।।[36]

कथासरित्सागर एवं बृहत्कथामञ्जरी की कथायें इसी सूत्र वाक्य का विस्तार एवं दृष्टान्त है।

स्त्रियों एवं ब्राह्मणों के प्रति उनके हृदय में अगाध सम्मान था। कुबेर के अनुज मणिभद्र यक्ष की पत्नी मदनमञ्जरी की रक्षा के लिये वे अग्निशिख नामक वेताल से खण्डकापालिक का वध करवाते हैं। कापालिक द्वारा सिद्ध जिन मंत्रों को निष्प्रभाव करने में स्वयं कुबेर एवं ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं, उन्हें विक्रमादित्य अपनी अतिमानवीय गुह्य शक्तियों से निष्फल कर देते हैं।[37]

भयभीत यक्षिणी द्वारा रक्षा के लिये पुकारे जाने पर कृपाणपाणि वे तत्काल प्रकट होकर उसे आश्वस्त करते हुये कहते हैं-

भद्रे मा मैषीर्निर्वृत्ता भव।
अहं कापालिकादस्माद्रक्षामि भवतीं शुभे।
को हि राज्ये ममाधर्ममीदृशं कर्तुमीश्वरः।[38]

आज का कोई नेता या शासक क्या राष्ट्र की महिलाओं को इस प्रकार आश्वस्त करता हुआ संरक्षण दे सकता है? उनके भ्रूमङ्ग या दृष्टिपात मात्र से महापापी पातक से विरत हो जाते हैं। कन्याओं का अपहरण करते वाले दो ब्रहम राक्षस कहते हैं -

ततो विषशीलस्य दृशैव पृथिवीपतेः
पतितावन्धकूपेऽस्मिन्नावां संत्यक्तकन्यकौ।।[39]

विक्रमादित्य की प्रत्यक्ष उपस्थिति की तो बात ही क्या उनके नाम का उल्लेख या सौगंधमात्र भी यक्ष राक्षस और वेतालों पर जादुई प्रभाव दिखाती है। उनकी शरणागतवत्सलता एवं साहस के ऐसे अनेक चामत्कारिक प्रसंग कथासरित्सागर एवं बृहत्कथा में वर्णित हैं

विक्रमादित्य की इन वीर गाथाओं से समग्र संस्कृत साहित्य किसी न किसी रूप में अनुप्राणित हुआ है। बृहत्कथामञ्जरी में विषमशील लम्बक का उपसंहार करते हुये कहा गया है -

अथ श्री विक्रमादित्य हेलया निर्जिताखिलः।
म्लेच्छान्काम्बोजयवनान्नीचान्हूणानसबर्वरान्।।
तुषारान्पारसीकांश्च त्यक्ताचारान्विशृङ्खलान्।
हत्वा भ्रूमङ्गमात्रेण भुवो भारमवारयत्।।[40]

इस प्रकार कथासरित्सागर एवं बृहत्कथामञ्जरी के साक्ष्य यह प्रमाणित करते है कि उज्जयनी नाथ विक्रमादित्य ने म्लेच्छों को परामूत कर इस धरा को मारमुक्त किया था। बृहत्कथामञ्जरी में स्पष्टतः म्लेच्छों को 'शकाधिप' कहा गया है। शकों के अतिरिक्त कम्बुज, यवन, हूण, पवरसीक आदि को भी उन्होने परास्त किया था।

इस प्रकार म्लेच्छों के विनाशक, आर्यधर्म के संस्थापक इतिहास के उपाधि पुरुष विक्रमादित्य संस्कृत कथा साहित्य में आस्था और विश्वास के दृष्टान्त पुरुष भी बन गये हैं।

ये कथायें विश्वास दिलाती हैं कि हारे हुये लोग भी विक्रमादित्य की भाँति, धन, सुहृद, बन्धु दयिता और राजसम्पद् को पुनः प्राप्त कर लेते हैं, जैसे कि शकों द्वारा छीनी गई महेन्द्रादित्य की राज्यश्री को विक्रमादित्य ने पुनः प्राप्त कर लिया था।

इन कथाओं में उनके दो रूप विशेष रूप से उभर कर सामने आये हैं -

प्रथम म्लेच्छों और शत्रु नृपों के लिये विषमशीलधन्वी रूप,

द्वितीय- पीड़ित, भयग्रस्त, आर्त, दीन, अनाथ की रक्षा के लिये तेजोदीप्त खड्गी रूप।
निराशा के गहन तमस् में आदित्य की प्रखर रश्मि बनकर आती हैं- ये कथायें।

सन्दर्भ :

1. कथासरित्सागर - 18.1.3-8
2. बृहत्कथामंजरी 10.1.7
3. कथासरित्सागर - 18.1.23
4. कथासरित्सागर - 18.1.37-39
5. विक्रमोर्वशीयम्- अंक 1, श्लोक 15 के पश्चात्।
6. विक्रमोर्वशीयम्- अंक 1, श्लोक 17 के पश्चात्।
7. विक्रमोर्वशीयम्- अंक 1, श्लोक 4,5,9,15 के पश्चात् गद्यभाग,
   अंक 2 - श्लोक 8 के पश्चात् गद्यभाग, अंक 4 - बिष्कम्भक,
   अंक 5 - श्लोक 15 एवं 19 के पश्चात् गद्यभाग।
8. कथासरित्सागर- 18.2.272-73
9. जय विषमशील में वीर विक्रमवारिनिधे विक्रमादित्य। कथासरित्सागर 18.3.104
10. लोकमानस में वीर विक्रमादित्य, डॉ पूरनलाल सहगल, विक्रमार्क- ग्रंथ i, पृ. 25
11. रघुवंशम् - 4.52
12. रघुवंशम् - 4.68
13. ऋग्वेद - 1.22.18
14. बृहत्कथामञ्जरी- 10.1.15
15. ऐतरेय ब्राह्मण- 6.3.15
16. अजय मित्र शास्त्री- प्राच्यप्रतिमा, पृ. 31
17. जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसाईटी ऑफ इण्डिया, XXVII। भाग जिल्द II, पृ. 204
18. भगवद् गीता- 10.41
19. कथासरित्सागर- 18.2.21
20. कथासरित्सागर- 10.2.45
21. बृहत्कथामञ्जरी 10.1.59-61
22. कथासरित्सागर- 18.1.59-60

23. बृहत्कथामञ्जरी- 18.1.15
24. कथासरित्सागर- 18.1.61-64
25. बृहत्कथामञ्जरी- 10.1.20
26. बृहत्कथामञ्जरी- 10.1.24-25
27. बृहत्कथामञ्जरी- 10.1.135-36, 151
28. रघुवंशम्- 7.35,59
29. कथासरित्सागर- 18.4.86.-94, बृहत्कथमञ्जरी- 10.6.189-192
30. रघुवंशम्- 5.50-55
31. रघुवंशम्- 5.55, कथासरित्सागर- 18.4.94
32. कथासरित्सागर- 18.4.136-137
33. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग XIX, XX, XXI, XXII, XXIII, भण्डारकर सूची क्र. 4, 27, 63, 80, प्लेट्स भण्डारकर सूची क्र. 117, 155, 200, 451, 481, 486 आदि
34. कथासरित्सागर- 18.1.76-78
35. कथासरित्सागर- 18.3.1-5
36. कथासरित्सागर- 18.1.66
37. कथासरित्सागर- 18.2.11
38. कथासरित्सागर- 18.2.21-23
39. बृहत्कथामञ्जरी - 10.1.75
40. बृहत्कथामञ्जरी - 10.2.285-86

डॉ. इला घोष
जबलपुर (म.प्र.)

सम्राट् विक्रमादित्य नवीन पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भो में

महाराजा विक्रमादित्य भारत के गौरव शाली शासक थे ।उन्होनें दीर्घ काल तक शासन किया। उनका शासन 60 वर्षों अथवा सौ वर्षों तक भारत पर रहा। लगभग 75 ई.पू. में पूर्वी मालवा (विदिशा क्षेत्र) में शुंग शासन समाप्त हो गया तथा कण्व शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित की, किन्तु कण्व शासकों ने कहाँ शासन किया इसका उल्लेख पुराणों में नही मिलता। अवन्ती प्रदेश पर 75 ई.पू. से लेकर 25 ई. तक विक्रमादित्य के अतिरिक्त किसी अन्य शासक के शासन का कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता। अतएव सम्पूर्ण विक्रमादित्य के आधिपत्य में रहा।

विक्रमादित्य से सम्बद्ध साहित्य यथा कथा सरित्सागर, वृहद कथामंजरी, सिंहासन-द्वात्रिंशिका, वेताल पंचविंशतिका, कालक-कथानक आदि सम्मिलित हैं। डॉ.राजबली पाण्डे ने विशेष रूप से साहित्यिक कृतियों के आधार पर विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता पर अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं।

वर्तमान में नवनवीन पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई हैं। उनमें बारह सिक्के, 19 मुद्रांक, 3 अभिलेख व कतिपय शिव प्रतिमाएँ सम्मिलित हैं। अत एवं उपलब्ध साहित्य साधन स्रोतों और नवीन पुरातात्विक सामग्री के आधार पर विक्रमादित्य के शासन कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति का आकलन कर सकते हैं।

सर्व प्रथम साहित्यिक स्रोतों में कथासरित्सागर में विक्रमादित्य के जन्म (माल्यवानगण के द्वारा उत्पन्न अथवा शिवांश) जन्म के समय दो नाम यथा विक्रमादित्य एवं विषमशील, राजकुमार को धनुर्विधाका प्रशिक्षण, राज्य अभिषेक, दिग्विजय आदि वर्णित हैं।

कालक, सुरी चरित्र कथानक में गर्दभिल्ल द्वारा कालकाचार्य की रूपवती छोटी बहन सरस्वती का उज्जयनी के शासक गर्दभिल्ल द्वारा अपहरण एवं उसे अपने अन्तःपुर मे रखना, कालक के बहुत अनुनय विनय पर भी उसे बधन मुक्त न करना तत्पश्चात् कालक द्वारा हिन्दूग देश से 96 शाहियों को लाकर गर्दभिल्ल पर आक्रमण करना, गर्दभिल्ल की पराजय एवं शकों का उज्जयनी पर 4 वर्षो तक शासन तत् पश्चात विक्रमादित्य की शकों पर विजय।

उपरोक्त साहित्यक साधन स्रोतों में उल्लेखित प्रसंगों व घटनाओं में नवनवीन प्राप्त पुरातात्त्विक साधना स्रोतों को सम्मिलित कर विक्रमादित्य कालीन इतिहास का अथवा विक्रमादित्य के विविध क्षेत्रों में किये गये कार्यों का वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है।

विक्रमादित्य से सम्बद्ध सिक्कों मुद्रा, मुद्रांक व प्रस्तर स्तम्भ अभिलेखों से उसके जन्म नामों की साहित्य में वर्णित प्रमाण की पुष्टि होती है । एक अनियमित आकार की मृणमय मुद्रा के धरातल पर सम्मुखाभिमुख भैरव खड़े हैं। उनके बाई ओर उनका वाहन श्वान खड़ा है उसके निम्न भाग में ब्राह्मी लिपि में हर भव विक्रम लेख अंकित है, अर्थात् शिवांशा स्वर्ण मुद्रा पर विक्रमादित्य नाम एक मृणमय मुद्रांक पर विषम तथा प्रस्तर स्तम्भ खंड पर विषमशील नाम का उल्लेख है।

कथा सरित्सागर में यह वर्णन है कि विक्रमादित्य म्लेच्छ असुरों का संहार करेगा तथा कालक कथानक में 96 शहियों द्वारा मालवा की राजधानी उज्जयनी पर यहाँ के शासक गर्दभिल्ल पर आक्रमण का वर्णन है। वर्तमान में इस आक्रमणकारी शक के उज्जयिनी पर आक्रमण के पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यह मथुरा

का सर्वप्रथम शक शासक रजुवुल या राजुल था। जिसके नेतृत्व में 96 शहियों ने उज्जयिनी पर आक्रमण किया था। रजुवुल का साम्राज्य सिन्धु उपत्यका से पश्चिमी मालवा तक विस्तृत था। मथुरा सिंहल द्वार अभिलेख में उसके परिवारजनों तथा उसके पुत्र षोडास का क्षत्रप पद पर स्थापित किये जाने का उल्लेख है। उसका एक अन्तिम प्रस्तर लेख नरसिंहगढ़ के समीप स्थित विहार कोटरा से प्राप्त हुआ है। उसकी एक ताम्र मुद्रा उज्जैन से प्राप्त हुई है। जिसके अग्रभाग पर ब्राह्मीलिपी में नाम श्री राजुल और पृष्ट भाग में खडे हुए दण्ड कमण्डलधारी शिव का अंकन है। उसके पुत्र षोडास की एक पोटीन मुद्रा उज्जैन से प्राप्त हुई है। जिसके अग्र भाग पर उसका नाम षोडास व गजाभिषेक लक्ष्मी का अंकन है। अत एव शक रजुबुल द्वारा उज्जैन पर आक्रमण के ये पुष्ट प्रमाण हैं। तत्पश्चात् विक्रमादित्य ने मालवगण सैन्य बल सहायता से उज्जैन से इन शकों को खदेड कर बाहर कर दिया व शकारी उपाधि से विभूषित हो कर संवत् प्रवर्तन किया।

उपलब्ध सिक्कों से विक्रमादित्य के पराक्रम, दिग्विजय, अश्वमेध यज्ञ की सूचना मिलती है। एक ताम्र मुद्रा पर द्वादशार चक्र का अंकन अर्थात् द्वादशादित्य सूर्य का प्रतीक उसके पृष्ठ भाग पर लेख विक्रम परवतन्द्रस, कतस (विक्रम पर्वतेन्द्र कृतस्य) अंकित है। उससे विक्रमादित्य के प्रताप तथा विध्यपर्वत क्षेत्र के स्वामी होने का आभास होता है। उसकी अन्य ताम्र मुद्रा पर अग्रभाग में पंख युक्त गतिशील अश्व का अंकन माणिक्यमाल के अन्तर्गत है। पृष्ठ भाग पर वेदिका वृक्ष लेख विक्रम तथा उज्जयि(नी) है। इस मुद्रा से विक्रमादित्य द्वारा अश्वमेध के आयोजन का प्रमाण प्राप्त होता है। उसकी एक स्वर्ण मुद्रा के अग्रभाग में वृत्तायत सूर्य किरणों युक्त प्रभा मण्डल उसके म ध्य वामाभिमुख राजा की आवक्ष प्रतिमा, चौड़ा कपाल, दीर्घायित नेत्र, लम्बी मुँछे तनी हुई, सिर पर गोल मणियों से विभूषित आभरण प्रदर्शित हैं। गोल कर्णकुण्डल व गले में मणियों से जटित हार और एकावली सुशोभित हैं। उसके पृष्ठ भाग पर वैदिका वृक्ष, दाहिनी ओर अश्व, बायी ओर निम्न शुंड हस्ती तथा वैदिका वृक्ष के उपरी भाग पर अर्ध चन्द्र युक्त त्रिमेरु तथा मुद्रा के ऊपरी किनारे पर ब्राह्मी लिपि में लेख राजा विक्रमादित्य उजेनिय' अर्थात् उज्जैन का राजा विक्रमादित्य। यह सर्व प्रथम राजा नामांकित दुर्लभ स्वर्ण मुद्रा है। यह भी संभावना है कि विक्रमादित्य के अश्वमेध आयोजन के पश्चात् इस स्वर्ण मुद्रा को प्रचलित किया होगा।

भीम बेठका में भी समस्त चित्रों में एकशैल चित्र में विक्रमादित्य समकालीन एक अश्वमेध का चित्रण अति सुन्दर है। लाल रंग से निर्मित है चित्र के मध्य भाग में यज्ञ का अश्व व उसकी पीठ पर ध्वज समान आकृति है। उसे पकड़े हुए योद्धा चल रहा है। अश्व के दोनों और योद्धा हैं। किसी के हाथ में ध्वज है। सेना के पीछे की ओर अलंकृत अश्व के उपर राजा बैठा है। राजा की सेना के सामने एक अन्य सेना उसके सम्मुख खड़ी है। सम्भवतः युद्ध के लिये तैयार है।

समाजिक स्थिति :

सात वाहन वंश के शासक हाल रचित गाथा सतसई में विक्रम विषयक गाथा इस प्रकार है।

संवाहण सुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खं।

नायक के कर में लक्ष मुद्रा दिये जाने का भाव प्रकट किया है। सिंहासनद्वात्रिंशिका में विक्रमादित्य की दानशीलता उदारता एवं प्रजापालन का वर्णन मिलता है। मंदसौर के समीप अँवलेश्वर नामक स्थल से प्राप्त एक स्तम्भ के उपरी गोल भाग पर ब्राह्मीलिपि में विक्रमादित्य दातेभ्य लेख उत्कीर्ण है। इस अभिलेख से भी विक्रमादित्य की दान दाता के रूप में पहचान की जा सकती है।

अँवलेश्वर स्थित एक अन्य स्तंभ के निम्नभाग की दाहिनी चौकी पर लेख से यह ज्ञात होता है। कि

विक्रमादित्य के शासन काल में समस्त जनता के जल उपयोग हेतु जलाशय बनवाया गया।

धार्मिक स्थिति :

चार ताम्र मुद्राओं पर राजा विक्रम नाम सहित शिव का अंकन है। एक मृणमय मुद्रांक पर भैरव का श्वान सहित अंकन है। एक अन्य मृणमय मुद्रांक पर लेख ''विक्रम रूद्रस महव'' तथा नन्दी अंकित है। गढ़कालिका से प्राप्त मूँठ युक्त एक प्रस्तर खण्ड के धरातल पर क्रमशः विक्रम नाम मूषक वाहन गणपति नदी पर आसीन शिव लेख रुद्रास गतिशील नंदी पर आसीन शिव तथा मूँठ पर सिंहारूढ़ पार्वती या दुर्गा का चित्रण उत्कीर्ण है। इस दृश्य से शिव के विविध रूप एवं शिव परिवार की एक झलक प्राप्त होती है।तथा उपरोक्त वर्णित मुद्रांक पर अंकित लेख विक्रम रुद्रस महव तथा इस प्रस्तर खंड पर चित्रित गतिशिल नंदी पर आसीन शिव के महाकाल महोत्सव विषयक जानकारी मिलती है।

पिंगलेश्वर मंदिर स्थित शिवलिंग के उपरी भाग पर विकमस (विक्रमस्य) नामोंल्लेख है। पिंगलेश्वर चतुर्मुख शिवलिंग के दक्षिण भाग में अघोर शिव की आवक्ष प्रतिमा है। उसमें नाक के नीचे विक्रम नाम तथा जलाधारी पर ''महादेव विमल जयती मवि'' लेख अंकित है। पश्चिम दिशा में वाम देव का उत्कीर्णन तथा शिरो भाग पर महादेवम वामस्यदेवम लेख उत्कीर्ण है।

विक्रम विश्वविद्यालय पुरातत्व संग्रालय उज्जैन में गणेश प्रतिमा के दाहिनी ओर ब्राह्मी लिपि में तीन पक्तियों में 1. सिधम गणपति 2. देवम और 3. विक्रम ज (यति) लेख उत्कीर्ण है।

अतएव उपरोक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य शिव के परमोपासक थे।

आर्थिक स्थिति :

साहित्य :

कथासरित्सागर आठवाँलम्बक : ठिण्ठा करालजुआरी कथानक में जुआरी द्वारा 100 कपर्दक (कौड़ियों) से आटा क्रय करने का वर्णन है।

भोजकृत श्रृंगार मंजरी में विक्रमादित्य कालीन मुद्राओं का दो कथानकों में यथा देवदत्ता कथानिका व लावण्य सुन्दरी कथानक में वर्णन है। उनमें स्वर्ण मुद्राओं तथा द्रममुद्राओं का विवरण है। मेंरुतुंग ने प्रबंध चिन्तामणि में उज्जैन नरेश विक्रमादित्य के शासन काल में टंक मुद्राओं का उल्लेख किया है।

वर्तमान विक्रमादित्य से सम्बद्ध चौदह मुद्राएँ जिनमें एक स्वर्ण मुद्रा एवं तेरह ताम्र मुद्राएँ सम्मिलित हैं

स्वर्ण मुद्रा का वजन आठ ग्राम अर्थात् 120 ग्रेन है।

इस स्वर्ण मुद्रा का 120 ग्रेन वजन अंतराष्ट्रीय स्तर अर्थात् रोमन दीनार के समकक्ष है। इतिहासकारों का यह कथन है कि इस प्रकार की स्वर्ण मुद्रा सर्वप्रथम कुषाण शासक विम कदफिस (प्रथम सदी ईस्वी.) में प्रचलित हुई। ये रोम से सम्पर्क होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

डॉ. वि. श्रीवाकणकर जी ने उज्जैन, कायथा एवं दंगवाड़ा से प्राप्त ग्रीको रोमन बुले पर दो लेखो का प्रकाशन किया है। उनका कथन है कि ये व्यापारी हुण्डिया हैं। उन पर रोमन लिपि के नाम से यह अनुमान लगाया जा सकता है। कि उस समय रोम से भारत का व्यापारिक सम्पर्क था। विक्रमादित्य के समकालीन रोम के शासक ज्यूलियस सीजर 45 ई.पू. तथा आगस्टस 31 ई.पू. से 14 ई. तक शासनरत थे।

विक्रमादित्य से सम्बद्ध ताम्र मुद्राओं का वजन क्रमशः 80 ग्रेन, 70, 50, 45, 27,20, व 16 ग्रेन है। इन विभिन्न तौल की मुद्राओं से समकालीन आर्थिक स्थिति ज्ञात होती है।इन मुद्राओं की तौल से प्रति दिन

वस्तुएँ क्रय करने तथा वस्तुओं के मूल्य की सूचना भी प्राप्त होती है।

अतएव वर्तमान में शासनकाल का पुरातात्विक संदर्भों को लेकर सम्राट् विक्रमादित्य के दीर्घ शासनकाल का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति के परिप्रेक्ष में इस लेख में एक नवीन ऐतिहासिक दृष्टि कोण प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. जे.एन. दुबे
शोध अधिकारी
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन(म.प्र.)

राजा भोज का धार ताम्रपत्र लेख

मध्यप्रदेश के धार नगर दुर्ग के द्वितीय से लगभग 100 मीटर दूर प्राचीर के निकट से श्रीरामसिंह लोमारे (सहायक संग्रहाध्यक्ष धार) को यह ताम्रपत्र 15-7-2015 को प्रातः 8:15 को प्राप्त हुआ। दो पत्र दो कड़ी में नत्थी हैं। ताम्रपत्र का वजन चार किलो है। आकार 33/1/2x22/1/2 से.मी. है। प्रथम पत्र में 16 पंक्तियों का और द्वितीय पत्र में 13 पंक्तियों का लेख है। लिपि ग्यारहवीं शती की नागरी है। भाषा संस्कृत है। अक्षर सुन्दर हैं। ताम्रपत्रों के भीतर की ओर उत्कीर्ण है। उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ में इसके फोटो 26.07.2016 को प्राप्त हुए। लेख की भाषा संस्कृत है जो प्रायः शुद्ध है। लेख में ब के स्थान पर सर्वत्र व और श के स्थान पर कहीं-कहीं स लिखा गया है। कहीं-कहीं अशुद्धि उकेरने की असावधानी के कारण भी हो सकती है। जैसे सर्वादाय को सार्वादाय, पुण्य को पुन्य आदि लिखे गये हैं। द्वितीय ताम्रपत्र के नीचे के दाहिने कोने पर सर्पधर मानवरूप गरुड़ का अंकन है। यह मालवा के परमारों का राजचिह्न था। दोनों ताम्रपत्रों के अन्त में लिखा गया है। स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य। अतः यह राजा भोज का दान पत्र है। इस पर संवत् 1080 पौष शुदि 9 अंकित है। परमारों के ताम्रपत्रों पर तिथि विक्रम संवत् के अनुसार होती है। अतः यह तिथि भी विक्रम संवत् होनी चाहिए। तदनुसार यह 23 दिसम्बर 1023 सोमवार का दिन होता है। यह ताम्रपत्र राजा भोज ने धार नगरी से जारी किया था। जो आजकल मध्यप्रदेश का जिला स्थान है। धारा पूर्व पथक के खंभिलक ग्राम की भूमि दान में दी गथी थी। खंभिलक आजकल खामला ग्राम कहलाता है। यह धार से पूर्व में इन्दौर सड़क पर छः किलोमीटर दूर स्थित उटावद ग्राम से एक किलोमीटर दक्षिण में धार जिला और तहसील में स्थित है।

यह भूदान ज्योतिर्विद् श्रीधर के पुत्र ज्योतिर्विद् भास्कर को दिया गया था। इनके पूर्वज मध्यप्रदेश के कर्वटपानीयक ग्राम से निकल कर आये थे। ये गौतम अंगीरस गौत्र और औतथ्य त्रिप्रवर तथा वाजिमाध्यन्दिन शाखा के थे।

इस ताम्रपत्र से प्रायः एक माह के भीतर ही भोज ने (सं. 1080 माघ शुदि 5 को) झाँसी ताम्रपत्र जारी किया था। उसका केवल अंतिम पत्र ही प्राप्त है।

राजा भोज के ताम्रपत्र के प्रथम श्लोक मे स्तुति करते हुए शिवजी को जगत् के बीज के अंकुर की आकृति के चन्द्र को सिर पर धारण करते हुए बताया गया है।

जयति व्योमकेशोऽसौ यः सर्गाय बिभर्ति ताम्।
ऐन्दवीं शिरसा लेखां जगद्बीजांकुराकृतिम्।।

राजा भोज के शैव दार्शनिक पुस्तक के प्रथम श्लोक में शिवाजी को जगत् का एक मात्र बीज कहा गया है।

चिद्घन एको व्यापी नित्यः सततोदितः प्रभुश्शान्तः।
जयति जगदेकबीजं सर्वानुग्राहकश्शंभुः।।

(तत्त्वप्रकाश प्रथम श्लोक)

(ताम्रपत्र वाचन डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित द्वारा । दिनांक 1.08.2016)

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन(म.प्र.)

धार में भोजदेव का ताम्रपत्र अभिलेख

प्रथम ताम्रपत्र

1. ओम् जयति व्योमकेशोसौ यः सर्ग्गाय वि(बि)भर्ति तां (ताम्)।
   ऐंदवीं शिरसा लेखां जगद्वी(बी) जांकुराकृतिं(म्)। (1)
2. तन्वन्तु वः स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः।
   कल्पान्तसमयोद्दामतडिद्वलयपिंगलाः॥ (2)
   परमभट्टा-
3. रक महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसीयकदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिरा-
4. जपमेश्वरश्रीवाक्पतिराजदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसिंधुरा-
5. जदेवपादानुध्यातपरभट्टारमकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवःकुशली॥ श्रीमद्धारापूर्व्व-
6. पथकान्तःपातिखंभिलकसमुपगतान् समस्तराजपुरुषान्- व्रा(ब्रा)ह्मणोत्तरान्-प्रति-
   निवासिपट्टकिलजन-
7. पदादींश्च समादिशत्यस्तु वः संविदितं॥ यथा श्रीमद्धारावस्थितैरस्माभिः स्नात्वा चराचरगुरुं भ-
8. गवन्तं भवानीपतिं समभ्यच्चर्य्य संसारस्यासातां दृष्ट्वा-
   वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमा-
9. त्रमधुरो विषयोपभोगः (।)
   प्राणास्तृणाग्रजलविं(बिं)दुसमा नराणां
   धर्म्मस्सखा परमहोपरलोक-
10. याने॥ (3)
    भ्रमत्संसारचक्राग्रधाराधरामिमां श्रियं(म्)
    प्राप्य ये न ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फ-
11. लम्॥ (4)
    जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्योपरिलिखितग्रामः स्वसीमातृणगोचरयूतिपर्य-
12. न्तं सहिरण्यदायभोगं सोपरिकरंसा(स)र्व्वादायसमेतश्च॥ मध्यदेशान्तःपातिकर्व्वट-
13. पानीयकग्रामविनिर्ग्गतपूर्व्वजाय। गौतमसगोत्राय॥ गौतमानांगिरस। औत-
14. थ्येति त्रिप्रवराय। वाजिमाध्यंदिनशाखाय॥ ज्योतिर्वित् श्रीधरसुताय ज्यो-
15. तिर्व्वित् भास्कराय। पूर्व्वकल्पितहलानां लेख्ये॥
    मातापित्रोरात्मनश्च पुन(ण्य)यसो(शो)-
16. स्वहस्तोयं श्रीभोजदेवस्य

द्वितीय ताम्रपत्र

17. भिवृद्धये अदृष्टफलमंगीकृत्य चन्द्राक्कार्णवक्षितिसमकालं यावत् परया भक्त्या शा-
18. सनेनोदकपूर्व्वप्रतिपादितस्तन्मत्वा यथा दीयमानभागभोगकरहिरण्यादिकं देवब्रा-
19. ह्मणभुक्तिवर्ज्जमाज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा सर्वमस्मै समुपनेतव्यमिति। सामान्यं चेदं पुण्य-
20. फलं वु(बु)ध्वा अस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्म्मादायोयमनुमन्तव्यःपाल-
21. नीयश्च॥ उक्तं च॥
    व(ब)हुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभि-
    र्यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य त-
22. दा फलं॥ (5)
    यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैद् र्दानानि धर्म्मार्थयस (श)स्कराणि।
    निर्माल्यवांतिप्रतिमानि ता-
23. नि को नाम साधुः पुनराददीत॥ (6)
    अस्मत्कुलक्रमदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च।
24. दानमिदमभ्यनुमोदनीयं (म्)।
    लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवुदवुद (बुदबुद)चंचलायाः
    दानं
25. फलं परयसः (शः) परिपालनं च॥ (7)
    सर्व्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भू-
26. यो याचते रामभद्रः।
    सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पाल-
27. नीयो भवद्भिः॥ (8)
    इति कमलदाम्वु(बु)वि(बि)न्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजी-
28. वितं च।
    सकलमिदमुदाहृतं च वु(बु)द्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या इति॥ (9)
29. सम्वत् 1080 पोष शुदि 9 स्वयमाज्ञा॥ मंगलं महाश्रीः॥ स्वहस्तोयं श्रीभोजदेवस्य

भोजदेव का धार ताम्रपत्र

प्रथम ताम्रपत्र

1. ओम्। इन भगवान् व्योमकेश (शंकर) की जय हो जो सृष्टि के लिये अपने सिर पर संसार के बीज की आकृति सी चन्द्रलेखा को धारण करते हैं।
2. कामदेव के शत्रु भगवान शंकर की जटाएँ आपका सदा कल्याण करें जो कल्प के अन्त में अनवरत चमकती विद्युत कांति सी पीले वर्ण की है।
3. परम भट् टाकर महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीसीयकदेव के चरणानुयायी परम भट्टारक महाराजाधिराज-
4. परमेश्वर श्रीवाक्पतिराजदेव के चरणानुयायी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीसिन्धुराज-
5. देव के चरणानुयायी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव सकुशल हैं। श्रीमत्धारा(नगरी) पूर्व-
6. पथक में आने वाले खंभिलक (ग्राम) में आने वाले समस्त राजपुरुषों, ब्राह्मणों से बाद वाले निवासी पटेल,
7. क्षेत्र के निवासियों को आदेश देते हैं- आपको ज्ञात हो कि श्रीसम्पन्न धारा (नगरी) में रहते हुए हमने स्नान करके चर और अचर के गुरु
8. भगवान भवानीपति (शिवाजी) की पूजा करके संसार की असारता को देखकर - यह पृथ्वी का स्वामित्व वायु से तितर बितर होते मेघों के समान है।
9. और विषयोपभोग आरंभ में ही मधुर होता है। प्राण तो तिनके की नोक पर टिकी जल की बूँद के समान होता है। परलोक यात्रा में धर्म ही लोगों का परम मित्र है।
10. घूमते संसार के चक्र के अगले भाग की धारा पर टिकी इस लक्ष्मी को पाकर जो प्रदान नही करते हैं उन्हे पछताने का ही फल मिलता है। (इस प्रकार)
11. संसार का नश्वर रूप जानकर ऊपर लिखा (खंभिलक) ग्राम अपनी सीमा के घास, गोचर के मिलाप तक
12. स्वर्ण सहित उपहार, भोग (राजस्व), उपरिकर (अतिरिक्त कर) समस्त लेनदारी सहित मध्यप्रदेश में पड़ने वाले कर्वट-
13. पानीयक ग्राम से जिसके पूर्वज निकले हैं, गौतम का सगोत्र गौतमांगिरस
14. औतथ्य नामक त्रिप्रवर वाजिमाध्यन्दिनशाखा के ज्योतिषी श्रीधर के पुत्र
15. ज्योतिषी भास्कर को पहले बताये हल का लेख (कृषि भूमि) माता, पिता तथा स्वयं के पुण्य यश
16. यह श्रीभोजदेव का स्वयं का हस्ताक्षर है।

(द्वितीय ताम्रपत्र)

17. की वृद्धि के लिये भविष्य के फल को स्वीकार (ध्यान में रखकर) चन्द्र, सूर्य, समुद्र, पृथ्वी की आयु तक (के लिये) परम भक्ति से
18. शासन के द्वारा (दान) जल छोड़कर सम्पन्न किया यह मानकर जैसा दिया जाने वाला भाग (अंश), भोग, कर, स्वर्ण इत्यादि देव,
19. ब्राह्मण के अधिकृत के अतिरिक्त को आदेश सुनकर सब इसके पास लाया जाए। इस पुण्य फल को सामान्य
20. समझकर हमारे वंशज और अन्य भावी भोक्ता (शासकों) द्वारा हमारे द्वारा दिये गये धर्मादा (धर्मदान) को मानना और पालन करना चाहिए।
21. कहा गया है - सगर आदि बहुत से राजाओं ने पृथ्वी का उपभोग किया। जिस जिसकी जब जब भूमि होती है तब तब उसे फल मिलता है।
22. प्राचीन काल में राजाओं ने जो दान दिये वे धर्म, अर्थ (धर्म के लिए) और यश कारक हैं। वे निर्माल्य और

कै के समान (त्याज्य) है।

23. कौन सज्जन उन्हें वापस लेता है ? हमारे कुल के उदार क्रम का उदाहरण देते हुए अन्यों के द्वारा भी
24. इस दान का अनुमोदन करना चाहिए। क्योंकि विद्युत और बुदबुदे के समान चंचल लक्ष्मी का फल दान
25. और परायी कीर्ति का पालन करते रहना है। भावी समस्त राजा- महाराजाओं से
26. रामभद्र बार बार याचना करता है कि यह (सब) राजाओं धर्मसेतु है जिसका आप सबको समय समय पर पालन करना चाहिए।
27. इस प्रकार कमलपत्र पर जलबिन्दु के समान लक्ष्मी और मानव जीवन को चंचल सोच समझकर
28. यह सब कहा गया। उसे समझकर लोगो को अन्य लोको की कीर्ति का लोप (मिटाना) नही करना चाहिए
29. संवत् 1080 पौष शुदि 9 स्वयं की आज्ञा। मंगल महाश्री। यह श्रीभोजदेव का स्वयं का हस्ताक्षर है।

वाचन - भगवतीलाल राजपुरोहित

हमे गत वर्ष बाड़काली का उज्जैन के एक खेत से
एक मृण्मुद्रा मिली है जिसपर विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दि की ब्राह्मी
लिपि मे ⊣⊢∩ᓚ⊥E⊥↓ कतस उज्जैनीय लेख अंकित
मुद्रा गोल है तथा लेख भी गोलाकार में है। मध्य मे स्वास्तिक
है जिसकी भुजा पर मकार संलग्न है अतः हम इसे
विक्रम पूर्व या इसा पूर्व प्रथम शताब्दि मे रख सकते है।
पूर्व मुद्रा इस प्रकार है। कतस का संस्कृत रूप कृतस
होता है अतः कृत संवत्सर कर्ता से इसका संबंध संभाव्य है।

2 cms

दूसरी मृण्प्रतिमा प्रयाग के हिन्दी विभाग के रीडर डॉ.
जगदीश गुप्त को मिली है उन्होने उसे दो वर्ष पूर्व पुरातत्व
नामक पत्रिका मे प्रकाशित किया है इस पर एक बालक
सिंह के दांत गिन रहा है यह बताया है पीछे की ओर वृक्ष और
चिह्न अंकित है तथा किसी भी दशा मे इसे 2 री
शताब्दी के बाद का नही माना जा सकता। मेरा कालिदास
के अभिज्ञान शाकुंतलम् मे भरत द्वारा सिंह के दांत गिनने का
प्रसंग है उससे प्रभावित यह चित्र है तथा इस दृश्य का
को 2 री सदी के पूर्व काल मे आधारित करने मे इसका महत्वपूर्ण
आधार है। पत्रो मे यह फोटो पास है यह असल रूप मे डॉ. गुप्त के पास है। हमने इसे केवल कालिदास काल निर्णय का
आधार माना है।

→ 9 cms.

भवदीय
वि. श्रीवास्तव
23-8-88.
INCHARGE,
ARCHAEOLOGICAL EXCAVATIONS & MUSEUM,
VIKRAM UNIVERSITY, UJJAIN.

सम्राट विक्रमादित्य

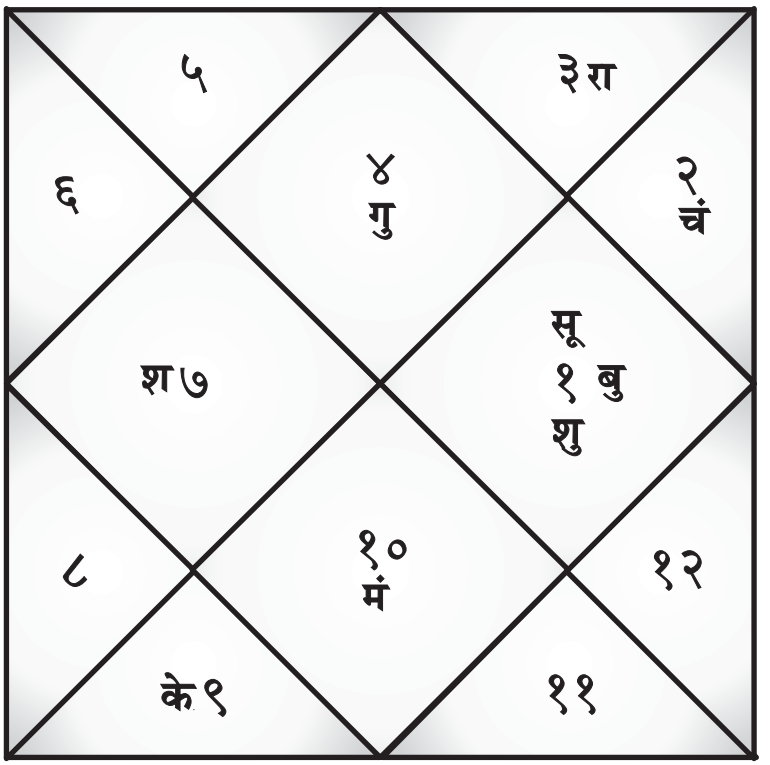

गुरु शनि मंगल सूर्य चन्द्र राहु केतु उच्चस्थ

महानता दर्शक संघर्षरत

सिंहस्थ 2016 के समय विक्रमादित्य की रूद्रसागर स्थित प्रतिमा का डाक टिकिट जारी हुआ।
और 2018 में शैव महोत्सव में विक्रमादित्य की मुद्रा पर डाक टिकिट जारी हुआ।

गोलाकार ताँबे का ठप्पा : ठप्पे के निम्न किनारे पर लेख 'विकमस'।
और ऊपरी किनारे पर 'विक्रमस' (विक्रमस्य)

रजत मुद्रा : पुरोभाग - दाहिने हाथ में सूर्य ध्वज एवं बायें हाथ में पात्र लिये राजा खड़ा है।
राजा के बाई और लेख 'राजा विक्रमादित्य'
पृष्ठ भाग : द्वि-वृत्त उज्जयिनी चिह्न

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषवहिष्कृतः।
भूतार्थकथने यस्य स्थास्यत्येव सरस्वती॥

वही गुणी व्यक्ति प्रशंसनीय है जो अपने पराये से हटकर यथार्थ कहने में दृढ़ रहता है।

– कल्हणकृत राजतरंगिणी

स्वामी / प्रकाशक : डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, निदेशक महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, 1 उदयन मार्ग, उज्जैन (म.प्र.) से प्रकाशित तथा मुद्रक विनय तिवारी, प्रबंधक द्वारा पंचायतीराज मुद्रणालय, 1 औद्योगिक क्षेत्र, नागझिरी, देवास रोड़, उज्जैन (म.प्र.) से मुद्रित। सम्पादक : डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित।

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं
आजादी के संघर्ष पर केन्द्रित
यादगार पुस्तकों से साक्षात्कार

आजादी के आंदोलन में
अपना सब कुछ न्यौछावर
कर देने वाले असंख्य
क्रांतिवीरों और
अनाम योद्धाओं
को नमन।

स्वराज संस्थान संचालनालय
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन
रवीन्द्र भवन परिसर, भोपाल-462002
फोन : 0755-2660563, 2660407
फैक्स : 2661926